श्रमण भगवान महावीर की पच्चीस-सौ वीं निर्वाण तिथि समारोह के उपलक्ष्य में

इन्द्रभूति गौतम

एक अनुशीलन

['गणधर इन्द्रभूति गौतम' पर सर्वथा मौलिक, तथा शोधपूर्ण आकलन]

लेखक — आशीर्वचन

श्री गणेश मुनि शास्त्री — **उपाध्याय श्री अमर मुनि**

●

सपादक : भूमिका

श्रीचन्द सुराना 'सरस' — **डा० जगदीश चन्द्र जैन**

एम० ए० पी-एच० डी०

सन्मति साहित्य रत्नमाला का ११४ वां रत्न

पुस्तक : इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन	लेखक श्री गणेश मुनि शास्त्री 'साहित्यरत्न'
सम्पादक . श्रीचन्द सुराना 'सरस'	भूमिका डॉ० जगदीशचन्द्र जैन एम० ए० पी-एच० डी०
प्रेरक श्री जिनेन्द्र मुनि 'काव्यतीर्थ'	प्रकाशक : सन्मति ज्ञान पीठ लोहामण्डी, आगरा
मुद्रक : प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस आगरा	मूल्य चार रुपये

प्रथम प्रकाश

अक्टूबर १९७०

समर्पण

•

ज्ञान के देवता
विज्ञान के अध्येता
तर्कशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित
मरुधरा के भूषण
क्रियानिष्ठ
तपोधन
महामनीषी
स्वर्गीय
आचार्य सम्राट
श्री अमरसिंह जी महाराज की
पावन-पुण्य स्मृति मे
सादर
सविनय
समर्पण........... ।

—गणेश मुनि

•

आशीर्वचन

गणधर इन्द्रभूति का महाप्राण व्यक्तित्व श्रमण परम्परा के समग्र गौरव का एक पिंडीभूत रूप है।

श्रुत महासागर की असीम-अतल गहराई मे पैठकर भी सत्य की उत्कट जिज्ञासा, विचारो का अनाग्रह तथा हृदय की विरल-विनम्रता, मधुरता, सरलता का विलक्षण सगम, इन्द्रभूति के जीवन का अद्वितीय रूप है, न सिर्फ श्रमण सस्कृति मे, अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति मे भी !

पच्चीस-सौ वर्ष पूर्व का यह महान् व्यक्तित्व श्रमण-ब्राह्मण परम्परा के बीच सेतु बनकर आया, और सास्कृतिक-मिलन, धार्मिक-समन्वय एवं वैचारिक-अनाग्रह का मार्ग प्रशस्त करने मे सफल हुआ।

यद्यपि ऐसे असाधारण व कालातीत व्यक्तित्व का आकलन शब्दातीत होता है, फिर भी उसे शब्दानुगम्य बनाने का प्रयत्न युग-युग से होता रहा है। प्रस्तुत मे विद्वान लेखक एव सम्पादक ने इन्द्रभूति के उस महामहिम शब्दातीत रूप को शब्द-गम्य बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। पुस्तक का सरसरी तौर पर अवलोकन कर जाने पर मुझे लगा है—गौतम के व्यक्तित्व की गहराई को श्रद्धा एव चितन के साथ उभारने का यह प्रयत्न वास्तव मे ही प्रशसनीय है तथा एक बहुत बडे अभाव की सपूर्ति भी।

ऐसे अनुशीलनात्मक विशिष्ट-ग्रन्थो से पाठको की ज्ञानवृद्धि के साथ तत्वजिज्ञासा भी परितृप्त होगी—ऐसा विश्वास है।

—उपाध्याय अमर मुनि

'इन्द्रभूति गौतमः' एक अभिमत

जिस प्रकार वृक्ष की महिमा को ईश्वर प्रकट करता है, पुरुष की महत्ता प्रकृति दर्शाती है, भगवन्त के ऐश्वर्य को सन्त उजागर करते है, उसी प्रकार भगवान महावीर की अनन्त श्री को इन्द्रभूति गौतम ने जाज्वल्यमान किया। और भवज्वाला शान्त करने वाले, दुनिया की आग बुझाने वाले उन गौतम गणधर के दिव्यरूप को यहाँ श्री गणेश मुनि जी ने प्रकाशमान किया है। इस दिव्य ग्रन्थ से जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई है, पाठक इसमे देखेंगे कि वीत-रागता और तज्जन्य समता, शांति और आनन्द जैन धर्म की मूल पृष्ठ भूमि है।

विद्वान लेखक को इस 'थीसिस' पर 'डॉक्टरेट' मिलनी चाहिये और उन्हे विशेष पद से विभूषित किया जाना चाहिये।

इस अनुपम कृति के उपलक्ष मे मैं ज्ञानयोगी श्रीगणेशमुनि जी का तथा सम्पादक बंधु का और उनके भाग्यशाली पाठको का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

—नारायणप्रसाद जैन
बम्बई

प्रकाशकीय

'साहित्य समाज का दर्पण है'—यह उक्ति पुरानी होते हुए भी सर्वथा सार्थक है। जिस राष्ट्र, समाज एव परम्परा के पास अपना साहित्य नही है, वह अन्य दृष्टियो से भले ही समृद्ध हो, किंतु विचार एव इतिहास की दृष्टि से तो दरिद्र प्राय कहे जा सकते हैं। विचार एव चिन्तन का अक्षय कोप ही सच्ची समृद्धि है और वही साहित्य के रूप मे समाज व परम्परा की प्राणप्रतिष्ठा करता है।

सौभाग्य से श्रमण परम्परा को आज साहित्य के रूप मे विचार-चिन्तन का अक्षय कोष से प्राप्त है। इतिहास व साहित्य की दृष्टि से उसकी समृद्धि एक गौरवास्पद विषय है। श्रमणसस्कृति के चिन्तन का सबसे प्राचीन एव मौलिक सग्रह 'आगम' के नाम से विश्रुत है। 'आगम साहित्य' ही श्रमण विचारधारा का प्राण कहा जा सकता है, और उस सस्कृति के सपूर्ण वाङ्मय का आदिस्रोत भी। 'आगम' के अर्थोपदेष्टा तीर्थंकर होते हैं, किंतु उसकी शब्द संयोजना मे गणधरो की प्रखर प्रतिभा और अक्षय-श्रुत सपदा का चमत्कार भरा रहता है। इसलिए आगम का मूलाधार तीर्थंकर होते हुए भी 'गणधर' के बिना उसकी आपूर्ति सभव नही है। इस दृष्टि से हमारे समस्त वाङ्मय के प्राण-प्रतिष्ठापक गणधर ही कहे जा सकते हैं। गणधरो की इस सूची मे इन्द्रभूति गौतम का नाम शीर्षस्थ है। आगम साहित्य का अधिकाश भाग आज इन्द्रभूति गौतम की जिज्ञासा और भगवान महावीर के समाधान के रूप मे ही है। यदि आगम वाङ्मय मे से महावीर-गौतम के सवाद निकाल दिए जाय, तो पता नही फिर आगम मे क्या बच पायेगा ? गौतम महावीर के संवाद जैन वाङ्मय का प्राण कहा जा सकता है। आगमो मे गौतम एक व्यक्ति रूप मे नही, किंतु एक प्रखर जिज्ञासा के रूप मे खडे हैं, और महावीर एक समाधान बनकर उपस्थित होते हैं।

इन्द्रभूति गौतम की देन—केवल श्रुत-सपदा के रूप मे ही नही, किंतु चारित्रिक सद्गुणो की एक सजीवमूर्ति के रूप मे भी है। इन्द्रभूति का व्यक्तित्व इतना विराट और वहुमुखी है कि वह ज्ञान एवं चारित्र की सुन्दर तथा सर्वांगीण व्याख्या कहा जा सकता है। ज्ञान एवं विनम्रता, उदग्र तप साधना एव उदार क्षमा, उच्चतम सन्मान तथा स्नेहिल मधुर हृदय, ऐसा दुर्लभ सयोग है जो गौतम के व्यक्तित्व मे मणि-काचन की तरह सुशोभित हो रहा है। ऐसे सार्वभौम व्यक्तित्व का शब्दाकन आज तक नही किया गया—यह सखेद आश्चर्य की वात है। किन्तु साथ ही गौरवपूर्ण हर्ष भी है कि अव इस विरल व्यक्तित्व पर एक सुन्दर, सरस साथ ही मौलिक शोधपूर्ण कृति हमारे समक्ष आई है—'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन' के रूप मे।

'इन्द्रभूति गौतम' के लेखक हैं श्री गणेशमुनि जी शास्त्री, जो श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनि जी म० के सुयोग्य शिष्य हैं। श्री गणेश मुनि जी अव तक कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिख चुके हैं, किंतु उन सवमे प्रस्तुत पुस्तक अपना अलग ही स्थान रखती है। इसकी सामग्री, विषय-वस्तु एव प्रतिपादन शैली सर्वथा मौलिक, शोधपूर्ण एव प्रभावोत्पादक है। अपने विषय की यह नवीन एवं पहली पुस्तक है। इसकी भाषा वडी रोचक, आकर्षक और प्रवाहमयी है। दार्शनिक विषयो को भी वडी स्पष्ट एव सही तुलनात्मक भाषा मे सरलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक-लेखक के साथ सपादक श्री श्रीचन्द सुराना 'सरस' भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अपनी अनुभव पूर्ण सपादन कला का पूरी तन्मयता के साथ चमत्कार दिखाया है। पुस्तक को प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर एव परिपूर्ण वनाने मे उनका योगदान लेखक एव प्रकाशक दोनो को प्राप्त हुआ है अत वे हमारे अपने होते हुए भी कृतज्ञता की पुकार के रूप मे हम उन्हे पुन धन्यवाद देते हैं।

सन्मति ज्ञान पीठ का यह सौभाग्य है कि महामनीषी श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी म० का वरदहस्त प्राप्त हुआ है। उनके निर्देशन मे सन्मति ज्ञान पीठ आज पचीस वर्ष से निरतर सत्साहित्य प्रकाशन की दिशा मे प्रगति कर रही है। उन्ही की कृपा से प्रस्तुत पुस्तक हमे प्रकाशन के लिए प्राप्त हुई हैं।

हमे आशा और विश्वास है कि अन्य प्रकाशनो की भाति प्रस्तुत प्रकाशन भी हमारे पाठको को रुचिकर एव ज्ञानवर्धक लगेगा और वे अधिकाधिक सख्या मे अपनायेंगे।

जैन भवन
आगरा
३०-९-७०

मंत्री
सन्मति ज्ञान पीठ

लेखक की कलम से

•

विश्व के उदयाचल पर कभी-कभार ऐसे विरल व्यक्तित्व उदित होते हैं, जिनमे एक ही साथ धर्म, दर्शन, सस्कृति और सभ्यता का उर्जस्वल रूप व्यक्त होता है। उनकी वाणी मे धर्म और दर्शन आकार लेते हैं, उनके व्यवहार मे सस्कृति और सभ्यता का रूप निखरता है। उनका जीवन ज्ञान, भक्ति एव कर्म का सजीव शास्त्र होता है। ऐसे महान् व्यक्तित्व प्रधान महापुरुषो का अवतरण आर्य भूमि-भारत मे सदा से होता रहा है। जिन के विचार-व्यवहार का प्रकाश आज भी धर्म और समाज के अचलो को आलोकित कर रहा है।

आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, भारत के पूर्वांचल मे एक ऐसे ही महाप्राण व्यक्तित्व का उदय हुआ था जिसके जीवन मे समर्पण, साधना, ज्ञान एव चारित्र की चतुर्मुखी धाराएँ एक से एक अग्र-स्रोता बनकर वही। वह महाप्राण व्यक्तित्व दो सस्कृतियो का महासंगम था, और सपूर्ण भारतीय सस्कृति का एक जीता जागता दर्शन था। तीर्थंकर वर्धमान के चरणो मे सर्वात्मना समर्पित उस महिमाशाली व्यक्तित्व का नाम था—इन्द्रभूति गौतम।

प्रस्तुत पुस्तक से सदर्भ मे भगवान महावीर के उन्ही प्रधान अतेवासी इन्द्रभूति गौतम की चर्चा की गई है। जैन पम्परा के अतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवन के साथ गणधर गौतम का सम्बन्ध कितना घनिष्ठ रहा है यह आगमो के पृष्ठो का पर्यवेक्षण करने से स्पष्ट परिज्ञात हो जाता है। भगवान महावीर के दीर्घ चिन्तन को, लोक कल्याणी गिरा को जो आगम का रूप दिया गया है, उसका श्रेय इन्द्रभूति गौतम को है। गौतम का सम्पूर्ण जीवनदर्शन आगम व इतिहास के पृष्ठ-पृष्ठ पर झाँक-झलक रहा है, उन्हे एक साथ एक स्थान पर एकत्र करले आना सभव नही लगता, फिर भी अतस्थ की भावना को साकार रूप प्रदान करने की दृष्टि से गणधर गौतम के विराट् बहुमुखी एव सार्वभौमिक व्यक्तित्व का यह छोटा-सा रेखाकन प्रस्तुत किया गया है, एक श्रद्धाञ्जलि के रूप मे।

गौतम के व्यक्तित्व का सार्वदेशिक सूक्ष्म चित्रण करने के लिए जैन वाङ्मय के प्रत्येक आगम एव प्रत्येक ग्रन्थ का आलोडन-अवगाहन करना आवश्यक है। इस

महान् कार्य की सम्पन्नता किसी एक लेखक के द्वारा सभव नही है, तथापि हमने प्रयत्न पूर्वक विविध ग्रन्थो का अवलोकन एवं अनुशीलन करके आज तक के वहुत वडे अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। आशा है यह प्रयत्न पाठको को रुचिकर व ज्ञानप्रद प्रतीत होगा।

परम श्रद्धेय कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी महाराज का निश्छल मधुर स्नेह वरवस मन-मस्तिष्क मे चलचित्र की भाति उद्‌बुद्ध हो ही जाता है। सन्मति ज्ञान पीठ जैसे सुविश्रुत साहित्यिक प्रतिष्ठान से 'अहिंसा की वोलती मीनारें' के पश्चात् 'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन' मेरे दूसरे ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है, यह उनकी उदारता का फल है। उपाध्याय श्री जी हम जैसे नौ सीखिया साधुओ के लिए साहित्यिक क्षेत्र मे सदा पथ प्रदर्शक वने रहे हैं।

महामहिम परमादरणीय श्रद्धेय गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। कारण गुरुदेव श्री का प्रत्यक्ष या परोक्ष मे मुझे अनवरत साहित्यिक सहयोग मिलता रहा है। प्रस्तुत दृष्टि से वे मेरे आद्य प्रेरणा-स्रोत कहे जा सकते है।

सम्पादनकला मर्मज्ञ श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' ने प्रस्तुत ग्रन्थ का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया है। साथ ही ग्रन्थ को मुद्रण कला व आधुनिक साज-सज्जा से सुसज्जित वना दिया है। अत वे मेरे स्मृति पथ से कदापि विलग नही हो सकते।

विद्वद्‌वर्य डा० जगदीशचन्द्र जैन ने मेरे आग्रह को मान्यकर सुन्दर भूमिका लिखने का जो कष्ट किया है, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। अन्त मे मैं उन सभी लेखक व विद्वानो का हृदय से आभार मानता हूँ जिनके लेखन से प्रस्तुत शोध प्रवन्ध लिखने मे मुझे केवल सहयोग ही नही मिला, वल्कि दृष्टि व मार्गदर्शन भी मिला है।

जैन धर्म स्थानक
दादर, वम्वई-२८
संवत्सरी महापर्व
५-९-७०

—गणेश मुनि शास्त्री
साहित्यरत्न

प्रास्ताविक

भारतीय प्राचीन साहित्य के इतिहास की ओर दृष्टिपात करने से लगता है कि सचमुच भारत के प्राचीन विद्वान लेखक बहुत ही निस्पृह वृत्ति के थे। यश कीर्ति की उन्हे जरा भी एषणा न थी। इसीलिये वे अपने निज के अथवा अपनी-कृति के सम्बन्ध मे परिचय देने की आवश्यकता नही समझते। परिणाम यह हुआ कि हम अपने साहित्य के क्रमिक इतिहास का अध्ययन कर उसके मूल्याकन से वचित रह गये।

भगवान महावीर और भगवान बुद्ध जैसे लोक-विश्रुत तपस्वी लोक नेताओ की जन्म एव निर्वाण-तिथि के सम्बन्ध मे आज भी हमे कितना ऊहापोह करना पडता है? और महावीर की निर्वाण भूमि के सम्बन्ध मे निश्चय से नही कहा जा सकता कि यह वही मध्यमपावा है जो महावीर-निर्वाण के पूर्व अपापा कही जाती थी, जहाँ काशी—कौशल के गण राजाओ ने एकत्र होकर महावीर-निर्वाणोत्सव उजागर किया था।

ऐसी हालत मे यदि गौतम इन्द्रभूति के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी उपलब्ध न हो तो आश्चर्य की वात नही। प्राचीन जैन ग्रन्थो से उनके सम्बन्ध मे हम इतना ही जानते हैं कि वे गौतम गोत्रीय, विहार के अन्तर्गत गोब्बर ग्राम निवासी, भगवान् महावीर के प्रमुख गणधरो मे थे। मगध के वे सुप्रसिद्ध विद्वान् ब्राह्मण थे, तथा अग्निभूति और वायुभूति नामक अपने भाइयो के साथ भगवान् महावीर के समवशरण मे उपस्थित हो श्रमणो की निर्ग्रन्थ दीक्षा उन्होंने ग्रहण की थी। इन्द्रभूति अत्यन्त जिज्ञासु थे जिसके परिणाम स्वरूप जैन आगमो की वाचना को द्वादशाग का रूप प्राप्त हुआ। भगवान महावीर के समक्ष उन्होने अपनी कितनी ही जिज्ञासायें प्रस्तुत की, जिनका समाधान महावीर ने वोधगम्य सरल भाषा मे किया। वस्तुत जैन आगमो का अधिकाश भाग गौतम इन्द्रभूति की जिज्ञासा का ही परिणाम समझना चाहिये।

इन्द्रभूति के अनेक सवाद जैन आगमग्रन्थो मे उल्लिखित हैं। इनमे उत्तराध्ययन-सूत्र के अन्तर्गत केशी-गौतम नामक संवाद विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है।

पार्श्वनाथ के अनुयायी चतुर्दशपूर्वधारी कुमारश्रमणकेशी ने महावीर के अनुयायी गौतम गणधर से प्रश्न किया कि—क्या कारण है कि पार्श्वनाथ ने सचेल और महावीर ने अचेल धर्म का उपदेश दिया है, जबकि दोनो ही निर्ग्रन्थ परम्परा के अनुयायी हैं। उत्तर मे गौतम इन्द्रभूति ने प्रतिपादित किया, कि "यह उपदेश भिन्न-भिन्न रुचि वाले शिष्यो को ध्यान मे रखकर किया गया है, वस्तुत दोनो महातपस्वियो का उद्देश्य ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा मोक्ष की प्राप्ति ही है। पार्श्वनाथ के चातुर्याम सवर और महावीर के पंचमहाव्रतो के अन्तर का यही रहस्य है।"

इस सवाद का महत्त्व इसलिये और भी बढ जाता है, कि इसमे जैन धर्म के सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रोफेसर हर्मन याकोबी की इस मान्यता को समर्थन प्राप्त होता है, कि बौद्ध धर्म के पूर्व भी जैन धर्म विद्यमान था।

कहने की आवश्यकता नही कि जब आरम्भ मे योरोप के विद्वानो ने जैन धर्म और बौद्ध धर्म का अध्ययन किया, तो श्रमण परम्परा को स्वीकार करने वाले दोनो धर्मों मे समानताओ को देखकर योरोप के अनेक विद्वान् जैन और बौद्ध धर्म को एक समझ बैठे, और कुछ तो जैन धर्म को बौद्ध धर्म की शाखा मानने लगे! जैसे बुद्ध, गौतम बुद्ध कहे जाते थे, वैसे ही इन्द्रभूति भी गौतम इन्द्रभूति के नाम से प्रख्यात थे। इससे भी भ्रान्ति पैदा हो गई थी।

इस भ्रान्त धारणा के निरसन का श्रेय प्रोफेसर याकोबी को प्राप्त है, जिन्होने जैन सूत्रो की अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना मे जैन धर्म का पृथक् अस्तित्व सिद्ध कर जैन पुरातत्व सम्बन्धी खोज को आगे बढाया।

इस दृष्टि से 'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन' महत्वपूर्ण लघु कृति है। यहाँ श्री गणेश मुनि शास्त्री ने इन्द्रभूति के सम्बन्ध मे विस्तृत चर्चा करते हुए, भारतीय चिन्तन की पृष्ठ भूमि के साथ उनके असाधारण व्यक्तित्व पर विद्वत्ता पूर्ण प्रकाश डाला है। जैन, बौद्ध एव ब्राह्मण ग्रन्थो के आलोडन पूर्वक सरल भाषा मे रची हुई उनकी यह पुस्तक स्वागत के योग्य है।

यह अति प्रसन्नता का विषय है, कि इधर जैन साधु समाज मे, विशेषकर स्थानकवासी साधु समाज मे, चिन्तन-मनन तथा सामाजिक आन्दोलनो के प्रति विशेष अभिरुचि देखने मे आ रही है। जिसका ज्वलत प्रमाण गणेश मुनि शास्त्री जी का अन्यतम साहित्य के साथ 'इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन है।

हम आशा करते हैं कि लेखक की इस लघु कृति का विद्वत्समाज मे सुन्दर समादर होगा।

१२ अक्तूबर, १९७०

जगदीश चन्द्र जैन

अनुक्रमणिका

खण्ड पृ० १–२२

सास्कृतिक अवलोकन

खण्ड २ पृ० २३–३२

भारतीय चिन्तन की पृष्ठ भूमि

खण्ड ३ पृ० ३३–५२

आत्म विचारणा

खण्ड ४ पृ० ५३–१०४

व्यक्तित्व-दर्शन

खण्ड ५ पृ० १०५–१४०

परिसवाद

परिशिष्ट १४१-१६०

इन्द्रभूति गौतम

एक

अनुशीलन

ड : १

सांस्कृतिक अवलोकन

•

जीवन-दर्शन •

आर्य इन्द्रभूति •

भगवान महावीर को कैवल्य एवं तीर्थ प्रवर्तन •

मगध की सास्कृतिक विरासत •

ब्राह्मण क्षत्रिय सघर्ष •

आत्मविद्या के पुरस्कर्ता क्षत्रिय •

पावा मे यज्ञ का आयोजन •

गौतम एक परिचय •

पावा मे भगवान महावीर •

निराशा और जिज्ञासा •

समवसरण की ओर •

सांस्कृतिक अवलोकन

जीवन-दर्शन

हिन्दी-साहित्य के जगमगाते ज्योतिर्मय नक्षत्र महाकवि सुमित्रानन्दन पत ने महा-मानव के जीवन की व्याख्या करते हुए कहा है—महान् व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति का जीवन एक स्वच्छ एवं निर्मल दर्पण-सा होता है। जिसमे राष्ट्र, जाति, समाज एव धर्म के आदर्श, सास्कृतिक विरासत, दर्शन एव चिन्तन की आकृति-प्रतिबिम्बित होती रहती है। उसका जीवन अन्तर के आत्म-प्रकाश, आत्म-ज्योति से ज्योतित होता है। उसके आत्म-आलोक से धर्म, समाज एव राष्ट्र के अंधकाराच्छन्न कोण आलोकित एवं प्रकाशित हो उठते हैं। उसके हृदय के स्पन्दन मे सपूर्ण मानवता की, सपूर्ण विश्व की धडकन होती है। इसी अभिधा मे कवि का स्वर अभिगुञ्जित हो रहा है—

जिसमे हो अन्तर का प्रकाश,
जिसमे समवेत हृदय स्पन्दन।
मैं उस जीवन को वाणी दूँ,
जो नव आदर्शों का दर्पण॥

विश्व, समाज एव सघ के उदयाचल पर कभी-कभार ऐसे विरल व्यक्तित्व उदित होते हैं, और अपनी आन्तरिक चमक-दमक की जगमगाहट से विश्व को

आलोकित करते हैं, जिसमे एक ही साथ धर्म, दर्शन, सस्कृति और सभ्यता का चतुर्मुख रूप अभिव्यक्त होता है, उनकी वाणी मे धर्म और दर्शन अवतरित होते हैं और उनके व्यवहार मे, आचरण मे सस्कृति और सभ्यता का रूप निखरता है तथा विचार और आचार-पल्लवित, पुष्पित एव फलित होता है। उनका जीवन केवल जीवन ही नही, ज्ञान, भक्ति एव कर्म का सजीव शास्त्र होता है।

भारत मे ऐसे व्यक्तित्व-सम्पन्न एव तेजस्वी व्यक्ति समय समय पर अवतरित होते रहे हैं, जिनके विचार और आचार, ज्ञान और क्रिया का दिव्य-प्रकाश आज भी धर्म एव समाज तथा भारतीय सस्कृति के सभी अंचलो को आलोकित कर रहा है, जन-जन के जीवन को ज्योति से ज्योतित कर रहा है। मर्यादापुरुषोत्तम राम, कर्म योगी श्रीकृष्ण, करुणामूर्ति बुद्ध, और श्रमण भगवान महावीर—ये चार आर्य संस्कृति के दिव्य रत्न हैं, उनके जीवन की रजत-रश्मियो से भारतीय संस्कृति को अपूर्व आलोक मिला है, और उनके जीवन की ऊर्जस्विता ने संस्कृति को प्राणवान वनाए रखा है। जव कभी इन महान् व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्तियो के जीवन का मैं गम्भीरता से अध्ययन करता हूँ तो मुझे यह स्पष्ट परिलक्षित होता है, कि इनके जीवन के साथ और भी चार तेजस्वी व्यक्तियो का घनिष्ट सम्वन्व रहा है। जिन्होंने अपने आपको पूर्णत समर्पण कर दिया था। जिनकी तेजस्वी श्रद्धा, भक्ति एवं निष्ठा तथा कृतित्वता इनके व्यापक एव विराट व्यक्तित्व मे इस प्रकार समाहित हो गई—'जाह्नवीया इवार्णवे—जैसे महासागर मे गङ्गा की निर्मल धाराएँ। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन मे स्नेह, सेवा और शौर्य की साकार मूर्ति लक्ष्मण, कर्म योगी कृष्ण के जीवन में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का एकनिष्ठ उपासक अर्जुन, करुणाशील तथागत वुद्ध के अनुपदो पर गतिमान सेवा-परायण आनन्द और समतायोगी भगवान महावीर की सावना मे ज्ञान के साथ अनन्य गुरु-निष्ठा के मूर्तिरूप इन्द्रभूति गौतम ने अपने आप को विलीन कर दिया था।

सावना के क्षेत्र मे व्यक्ति स्वय अपना विकास कर सकता है। परन्तु सावना को सिद्ध करके उसके प्रकाश को जन-जन के जीवन मे प्रसारित करने के लिए जव महान् व्यक्तित्वसम्पन्न व्यक्ति भी समाज मे प्रविष्ट होता है, अथवा सघ एवं समाज की स्थापना करता है, तो वह इसके लिए सहयोगी के रूप मे तेजस्वी व्यक्तित्व की अपेक्षा रखता है, और यह आवश्यक भी है। क्योकि सहयोग के विना कार्य को साकार रूप नहीं दिया जा सकता। ज्ञान की अभिव्यक्ति करने के लिए क्रिया का

सहयोग आवश्यक है। व्यक्ति का आचार ही व्यक्ति के विचार को अभिव्यक्ति दे सकता है। आचार के विना विचार साकार रूप नही ले सकता। इसीप्रकार श्रद्धालु एव कर्म-निष्ठ व्यक्ति ही महान् तेजस्वी व्यक्तित्व की तेजस्विता को जन-जन के सामने प्रकट कर सकता है। इस वात को हम यो भी कह सकते हैं कि राम, कृष्ण,वुद्ध और महावीर ज्ञान हैं, लक्ष्मण अर्जुन, आनन्द एवं गौतम कर्म है। वे विचार हैं तो ये आचार हैं। इसलिए दोनो मे घनिष्ठता एव एकात्मकता है। इतिहास इस वात का साक्षी है, कि राम लक्ष्मण के सहयोग से ही वनवास मे अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति दे सके, और लंका मे राक्षसी-वृत्ति पर विजय पा सके। हम उस जीवन मे लक्ष्मण को प्रत्येक कार्य मे राम के साथ ही देखते है। कर्मयोगी कृष्ण की गीता को, उनके विचारो को आत्मसात् करके उन्हे आचरण मे साकार रूप देने वाले अर्जुन को कृष्ण से अलग नही किया जा सकता। कृष्ण के विचारो की अभिव्यक्ति रूप अर्जुन परिलक्षित होता है। तथागत वुद्ध के साथ आनन्द का इतना घनिष्ठ सम्वन्ध रहता है, कि तथागत अपने विचार एव चिन्तन को आनन्द के माध्यम से ही जन-जन के समक्ष रखते हैं। और गौतम ने अपने व्यक्तित्व को और अपने आप को महावीर के व्यक्तित्व मे इतना मिला दिया था, कि वे स्वयं महावीर से भिन्न समझते ही नही थे। जव भी गणधर गौतम के मन मे किसी भी तरह की जिज्ञासा जागृत होती, मानस-सागर मे कोई विचार उर्मी तरंगित होती, तो वे उसका समाधान अपने चिन्तन की अतल गहराई मे उतर कर प्राप्त करने का प्रयत्न नही करते, वल्कि श्रमण भगवान महावीर के चरण-कमलो मे पहुँच कर प्राप्त करते।

यह तो मैं पूर्व स्पष्ट कर ही चुका हूँ, कि तेजस्वी व्यक्तित्व के तेज को सामान्य व्यक्ति नही, तेजस्वी व्यक्ति ही अपने जीवन मे आत्मसात् कर सकता है। राम अपने आप मे महान् थे, विराट् थे, पर उनकी महानता एव विराटता को साकार रूप देने का माध्यम लक्ष्मण ही था। लक्ष्मण ने राम की प्रभुता को जन-जन के समक्ष प्रस्तुत किया। अर्जुन का माध्यम पाकर ही कृष्ण की वाणी मुखरित हुई, और गीता का अवतरण हुआ, जो आज भी अलसाये हुए जन मानस को पुरुषार्थ के पथ पर वढने की महान् प्रेरणा प्रदान करता है। तथागत वुद्ध का वोधित्त्व भी आनन्द का सहयोग पाकर वाणी एवं भाषा के रूप मे अभिव्यक्त हुआ। और हमारा आलोच्य विषय इन्द्रभूति गौतम श्री भगवान महावीर की ज्ञान साधना को अभिव्यक्ति देने का माध्यम रहा है। आगम साहित्य का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि भगवान महावीर की दिव्य ज्ञान धारा को ग्रहण करने वाला प्रथम

व्यक्ति गौतम ही था। गौतम के दीक्षित होने के पश्चात ही संघ की स्थापना हुई, और द्वादशागी को साकार रूप दिया गया। आगम क्या है ? गौतम के माध्यम से एवं गौतम की जिज्ञासा का निमित्त पाकर भगवान की प्रवहमान उपदेश धारा ! प्रारंभ से अत तक यह हम देखते हैं, कि आगम का अधिकाश भाग गौतम के जिज्ञासा भरे प्रश्नो के समाधान एव उनको माध्यम वना कर दिए गए उपदेश से सवद्ध है। भगवान महावीर के जीवन के साथ गौतम का घनिष्ट सम्वन्ध इस वात से स्पष्ट होता है, कि भगवान महावीर के वाद आचार्यों द्वारा लिखे गये ग्रन्थो मे समय-समय पर उठने वाले प्रश्नो एव उनके समाधानो को महावीर और गौतम के नाम से आगमो के पृष्ठो पर तथा ग्रन्थो मे अकित किए गए हैं।

इस प्रकार गौतम जिज्ञासा थे और महावीर समाधान। और जव तक भगवान महावीर ने सिद्धत्व को प्राप्त नही कर लिया, तब तक गौतम जिज्ञासु ही वना रहा। इसलिए भगवान महावीर का निर्वाण गौतम के लिए चिन्ता का कारण वन गया। वह सोचने लगा, कि अव मुझे मेरी जिज्ञासा का समाधान कहाँ मिलेगा ? क्योंकि तव तक उसने अपनी जिज्ञासा के समाधान को अपने अन्दर पाने के लिए प्रयास ही नही किया था। परन्तु भगवान के निर्वाण के वाद जव अपने आप को परखने का एवं अपनी शक्ति को अनावृत्त करने की ओर ध्यान दिया, तो तुरन्त उसका सुपुप्त जिनत्व जागृत हो गया, उसने अपने आप मे महावीरत्व को पा लिया। और अव वह स्वय जिज्ञासा न रह कर समाधान वन गया। पारस के सपर्क को प्राप्त कर लोहा सोना तो वन जाता है, पर वह पारस नही वन पाता। किन्तु महावीर के सपर्क से गौतम ने महावीरत्व को अथवा जिनत्व को प्राप्त कर लिया।

प्रस्तुत सदर्भ से स्पष्ट होता है, कि गौतम का व्यक्तित्व महान्, विराट् एव तेजस्वी था। उनके व्यक्तित्व मे भगवान महावीर के उच्च ज्ञान, जैन दर्शन एव सस्कृति का हृदय छिपा है। और भगवान महावीर के लोक मगल व्यक्तित्व का ताना वाना भी जुडा हुआ है।

आर्य इन्द्रभूति

•

आर्य इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के प्रथम शिष्य एव प्रथम गणधर थे। आगम ग्रन्थो मे अनेक स्थानो पर उनकी चर्चा आई है। अनेक प्रसंग

प्रश्नोत्तर एवं परिसवाद इन्द्रभूति से सम्बन्धित हैं। भगवती, उववाई, रायपसेणी, पन्नवणा, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि अनेक आगम व आगमो का मुख्य-भाग गणधर इन्द्रभूति के प्रश्नो पर ही निर्मित हुआ है, ऐसा निर्विवाद कहा जा सकता है।

उपनिषद् कालीन उद्दालक के समक्ष जो स्थान श्वेतकेतु का है, गीतोपदेष्टा श्री कृष्ण के समक्ष अर्जुन का एव बुद्ध के समक्ष आनन्द का जो स्थान है, वही स्थान जैनागमों मे भगवान महावीर के समक्ष इन्द्रभूति गौतम का है। आगम-पृष्ठो पर इन्द्रभूति गौतम का जीवन परिचय देने वाली शब्दावली हमे कई रूपो मे उपलब्ध होती है। उनके अन्तरग एव बाह्य व्यक्तित्व को समग्र रूप से स्पर्श करके संतुलित एव प्रभावशाली शब्दो मे व्यक्त करनेवाला एक प्रसग भगवती सूत्र के प्रारम्भ मे इस प्रकार आया है।

"उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी-शिष्य इन्द्रभूति नाम के अनगार थे। वे गौतम गोत्री थे। उनका शरीर सात हाथ ऊँचा, समचौरस संस्थान एवं वज्रऋषभनाराचसघयन से युक्त था। उनका गौरवर्ण कसौटी पर खिची हुई स्वर्ण-रेखा के समान दीप्तिमान एवं पद्मकेसर के समान समुज्ज्वल था। वे उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, उदार, घोर, घोर-गुण युक्त, घोरब्रह्मचारी, शरीर की ममता से युक्त, संक्षिप्त (शरीर मे गुप्त), विपुल तेजोलेश्या को धारण करने वाले, चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता, चार ज्ञान से सम्पन्न— सर्व अक्षर सयोग के विज्ञाता थे।[1]

आगम एवं आगमेतर साहित्य मे गणधर गौतम का जो भी जीवन परिचय उपलब्ध है, उसमे यह सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वांग परिचय माना जा सकता है। उनका बाह्य दर्शन जितना आकर्षक, सुन्दर, एव ओजस्वी है, अन्तरंग जीवन परिचय

---

१. तेण कालेण तेणं समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठेअंतेवासी इदभूईणामं अणगारे गोयमसगुत्तेण सत्तुस्सेहे समचउरससठाणसठिए, वज्जरिसह- नारायसघयणे, कणय-पुलयनिसहपम्हगोरे, उग्गतवे, दित्ततवे, तत्ततवे, महातवे, ओराले, घोरे, घोरगुणे घोरतवस्सी, घोरबभचेरवासी, उच्छूढसरीरे, सखित्तविउल तेउलेसे, चोद्दसपुव्वी, चउनाणोवगए, सव्वक्खर सन्निवाई"···· ।

—भगवती सूत्र, शतक—१ पृ० ३३ प० वेचरदास जी द्वारा सम्पादित।

उससे अधिक तपोपूत, ज्ञानगरिमा-मडित एवं साधना की चरम कोटि मे पहुंचा हुआ है। इस महान् व्यक्तित्व मे ऐसी विलक्षणताएँ सन्निहित हुई हैं जिन्हे पढ़ सुन कर हृदय श्रद्धा से गद्‌गद् हो उठता है और बुद्धि कह उठती है—पच्चीस सौ वर्ष पूर्व का यह महान् व्यक्तित्व इन ढाई सहस्राब्दियो का अद्‌भुत एवं एकमेव व्यक्तित्व है। भगवान महावीर के वाद यदि कोई दूसरा सार्वभौम व्यक्तित्व जैन परम्परा मे है तो वह गणधर गौतम का है। भगवती सूत्र के शब्दो की गहराई मे जाएँ तो एक-एक शब्द के पीछे गौतम के जीवन की एक नही, अनेक विशेषताएँ, साधना की विरल उपलब्धियाँ जुडी हुई प्रतीत होती हैं। हम इसी परिचय रेखा के आधार पर इन्द्रभूति गौतम का जीवन परिचय वाह्य एव अतरंग व्यक्तित्व का एक विस्तृत जीवन दर्शन पाठको के समक्ष उपस्थित करना चाहते हैं।

जैन परम्परा में गणधर

●

जैन इतिहास एवं परम्परा मे 'तीर्थंकर' शब्द जितना प्राचीन एव अर्थ पूर्ण है, उतना ही प्राचीन एवं अर्थ पूर्ण है 'गणधर' शब्द। 'तीर्थंकर' तीर्थ अर्थात् सघ-साधु, साध्वी श्रावक-श्राविकारूप संघ के निर्माता' होते हैं तथा 'श्रुत रूप' ज्ञान परम्परा के पुरस्कर्ता होते हैं, और गणधर साधु, साध्वीरूप सघ की मर्यादा, व्यवस्था, एव समाचारी के नियोजक, व्यवस्थापक, तथा तीर्थंकरो की अर्थ रूप वाणी को सूत्र रूप मे सकलन करने वाले होते हैं।[२]

विशेषावश्यक भाष्य के टीकाकार आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र के शब्दो मे 'उत्तम ज्ञान दर्शन आदि गुणो को धारण करने वाले गणधर होते हैं।'[3]

समवायाग सूत्र[४] तथा कल्पसूत्र स्थविरावली[५] प्रवचन सारोद्धार[६] मे चौवीस

---

२. अत्थं भासई अरहा सुत्त गु फइ गणहरा निउणा।

—आचार्य भद्रवाहु

३. अनुत्तरज्ञानदर्शनादि गुणाना गण धारयन्तीति गणधरा ·—

—विशे० भा० टीका० गा० १०६२।

४. समवायाग सूत्र ११-७४

५. कल्पसूत्र (कल्पलता) पृ० २१५

६. प्रवचन सारोद्धार द्वार १५ गा ४७-५८.

तीर्थंकरो के विभिन्न गणो एवं गणधरो की नामावली प्राप्त होती है। जिससे यह जाना जा सकता है कि प्रत्येक तीर्थंकर के तीर्थ मे गणधर एक अत्यावश्यक उत्तर-दायित्व पूर्ण महान प्रभावशाली व्यक्तित्व होता है।

समवायाग सूत्र मे वताया है—श्रमण भगवान महावीर के ग्यारह गण एव ग्यारह गणघर थे।[७]

कल्पसूत्र मे नौ गण एव ग्यारह गणघर वताये हैं,[८] तथा प्रत्येक गणधर के नाम, गोत्र, शिष्य, परिवार आदि का विस्तृत लेखा जोखा भी दिया गया है। उनकी योग्यता, ज्ञान-क्षमता एव साधना तथा निर्वाण भूमि का परिचय भी उससे प्राप्त हो जाता है। आवश्यक नियुंक्ति मे आचार्य भद्रवाहु ने गणधरो का सक्षिप्त परिचय देते हुए निम्न विवरण दिया है।[९]

इन्द्रभूति, वायुभूति एवं अग्निभूति—ये तीन गणवर मगव जनपद के गोवर ग्राम मे जन्मे, तीनो गौतमगोत्री थे। व्यक्त एवं सुधर्मा गणवर का जन्म स्थल कोल्लाग सन्निवेश तथा क्रमश. भारद्वाज एव अग्निवेश्यायन गोत्र के थे। मडित तथा मोर्यपुत्र मोर्यसन्निवेश मे, एवं अचल गणधर कौशला तथा अकपित का जन्म मिथिला मे हुआ। इनके गोत्र क्रमशः वशिष्ठ, काश्यप, गौतम एवं हारीत थे। मेतार्य गणधर का जन्म वत्स भूमि (कोशावी) का तु गिक सन्निवेश मे और प्रभास गणधर का जन्म

---

७. समणस्सण भगवओ महावीरस्स एक्कारसगणा एक्कारस गणहरा होत्था—
तं जहा—इन्दभूई, अग्गिभूई··· ··· ··सम० स० ११

८. समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा एक्कारस गणहरा होत्था—
—कल्पसूत्र (स्थविरावली) सूत्र २०१

९. मगहा गोव्वर गामे जाया तिण्णेव गोयमस गोत्ता।
कोल्लागसन्निवेसे जाओ विअत्तो सुहम्मो य। ६४३।
मोरिय सन्निवेसे दो भायरो मडमोरिया जाया।
अचलोय कोसलाए मिहिलाए अकपियो जाओ। ६४४।
तु गिय सन्निवेसे मेयज्जो वच्छभूमिए जाओ।
भगव पियप्पभासो रार्यागहे गणहरो जाओ। ६४५।
तिण्णिय गोयम गोत्ता भारद्दा अग्गिवेस वासिट्ठा।
कासवगोयम-हारिय-कोडिण्ण दुग च गोत्ताइ। ६४९।
—आवश्यक नियुंक्ति

राजगृह मे हुआ। ये दोनो ही कौडिन्य गोत्रिय थे। लगभग इसी विवरण को आचार्य हेमचन्द्र[१०], गुणचन्द्र[११] एव नेमिचन्द्र आदि उत्तरवर्ती जीवन-चरित्र लेखको ने दुहराया है। गणधरो के सम्बन्ध मे सार रूप जानकारी परिशिष्टगत कोष्टक से भी ज्ञात हो जाती है। विशेष विवरण उपलब्ध नही होता है।

भगवान महावीर . कैवल्य और तीर्थ प्रवर्तन

●

भगवान महावीर इस अवसर्पिणी के चौवीसवें तथा अन्तिम तीर्थंकर थे। तीस वर्ष की युवावस्था मे राज्यवैभव एवं अपार भोगसामग्री को ठुकराकर निर्ग्रन्थ भिक्षु वन गये और कठोर एकात आत्म साधना मे लगभग वारह वर्ष छह मास तक सलग्न रहे। इस कठोर साधना काल मे उन्होने अपने को तपाया, दु सह कष्टो को सहन किया, और आधिभौतिक एव आधिदैविक घोर उपसर्गों के झंझावात मे भी अचल हिमाचल की भाति साधना का निष्कप दीप जलाते रहे।[१२]

एक समय भगवान महावीर साधना काल के अन्तिम वर्ष मे ग्रीष्म ऋतु के वैशाख महीने मे विहार करते हुये जृम्भिया ग्राम के वाहर ऋजु वालिका नदी के उत्तर किनारे पर श्यामाक नामक गाथापति के कृषि भूमि (खेत) मे पधारे। वहाँ शाल नामक वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन मे वैठ कर परम समाधि पूर्वक ध्यान की उच्च भूमिका मे पहुँच रहे थे। उनके राग-द्वेष क्षीण हो चुके थे। वे मोह पर विजय प्राप्त कर चुके थे। शुक्ल ध्यान की विशुद्धतर भूमिका पर पहुँचते ही श्रमण महावीर ने केवल ज्ञान केवल दर्शन का अनन्त आलोक प्राप्त किया।[१३] यह वैशाखशुक्ल दशमी का दिन इस अवसर्पिणी के अन्तिम तीर्थंकर श्रमण महावीर के

---

१०. त्रिपष्टिशलाका पुरुषचरित, पर्व १० सर्ग ५

११. महावीर चरिय, प्रस्ताव, ८.

१२. विशेष विवरण देखिए—(क) तीर्थंकर महावीर (विजयेन्द्रसूरि) भा० १
(ख) आगम और त्रिपिटिक . एक अनुशीलन (मुनि नगराजजी)

१३. (क) आचाराग २।२४।१०२४
(ख) आवश्यक निर्युक्ति
(ग) विशेपावश्यक भाष्य गा० ५२६ प्र० मा० पृ० ६०८
(घ) महापुराणे उत्तर पुराण ७४।३४८-३५५

कैवल्य महोत्सव का पवित्र दिन था। भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्त होते ही एक बार अपूर्व प्रकाश से सारा संसार जगमगा उठा। दिशाएँ शात एव विशुद्ध हो गईं थी, मन्द-मन्द सुखकर पवन चलने लगी, देवताओ के आसन चलित हुए और वे दिव्य देव दुन्दुभि का गंम्भीर घोष करते हुए भगवान का कैवल्य महोत्सव करने पृथ्वी पर आये।[१४] भगवान महावीर जंगल मे थे, अत. केवल ज्ञान प्राप्त होते ही उनकी प्रथम प्रवचन सभा मे कोई मनुष्य नही पहुँच सका। देवो का अगणित समूह उनकी वैराग्य-पीयूष-वर्षी वाणी से गद्‌गद अवश्य हो उठा, पर व्रत और सयम स्वीकार करके महावीर की प्रथम देशना की सफलता सिद्ध करना देवो के लिये असभव था। इस दृष्टि से भगवान महावीर का प्रथम प्रवचन निष्फल गया ऐसा भी कहा जाता है।[१५] जृम्भिया ग्राम से विहार कर श्रमण भगवान महावीर पावापुरी (मध्यम पावा) पधारे। पावा मगध की प्रमुख सास्कृतिक नगरी थी।

मगध की सांस्कृतिक विरासत

●

भारत के आध्यत्मिक इतिहास मे मगध का स्थान सर्वोपरि रहा है। मगध की सस्कृति मे श्रमण सस्कृति के बीज प्रारम्भ से ही पलते रहे हैं। श्रमण संस्कृति के विकास एवं प्रसार मे मगध का अपूर्व योग रहा है। म० महावीर तथागत बुद्ध एवं इन्द्रभूति गौतम जैसे आध्यात्मिक व्यक्तित्व मगध भूमि के गौरव की शाश्वत स्मृतियाँ हैं। जिसप्रकार भारतीय शासन मे गणतंत्र का विकास एव प्रयोग सर्वप्रथम मगध के अचल मे हुआ, उसीप्रकार भारतीय धर्म दर्शन तथा अध्यात्म क्षेत्र मे, वैराग्य, सन्यास अहिंसा, मोक्ष विचार आदि की विकास भूमि भी मगध जनपद (मगध से सम्पूर्ण पूर्व भारत की भावना लेनो चाहिए) एव उसके पारिपार्श्विक अंचल रहे हैं। मगध की यह सास्कृतिक विरासत आज भी भारतीय जन जीवन के उदात्त

---

१४. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्रम्—पर्व १०, सर्ग ५,

नोट—भगवान महावीर के कैवल्य वर्णन की तुलना मे बौद्धो ने बुद्ध के बोधि लाभ का आलकारिक वर्णन किया है। जातकअट्ठकथा (निदान) मे कहा है—बुद्ध ने जब बोधि लाभ प्राप्त किया तब चौरासी हजार योजन गहराई तक समुद्र का पानी मीठा हो गया। जन्माध देखने लगे, जन्म के बहरे सुनने लगे।"

१५. स्थानाग १०।३।७७७

चिंतन एवं ऊर्ध्वमुखी विकास की कहानी प्रस्तुत कर रही है।[१६] मगध जनपद की दो नगरिया पावा पुरी एवं राजगृही (मगध) उन दिनो सास्कृतिक एव धार्मिक जागरण का केन्द्र वनी हुई थी। उत्तर भारत से आये हुये आर्य पूर्व भारत मे वस कर नई धार्मिक चेतना के अग्रणी वन रहे थे। क्षत्रिय, जो कि मुख्यत. श्रमण परम्परा के अनुयायो थे, इनमे प्रमुख थे, और वे यज्ञवाद, वहुदेववाद एव जातिवाद के विरोध मे खुलकर अहिंसा, जातिप्रतिरोव एवं धार्मिक समानता का प्रचार कर रहे थे।[१७]

ब्राह्मण क्षत्रिय संघर्ष

उस युग मे मुख्यत वैदिक एवं अवैदिक इस प्रकार के दो वर्ग स्पष्ट रूप से सामने आ रहे थे। यज्ञ का प्रतिरोव करने वाले चाहे वे श्रमण रहे हो या ब्राह्मण, अवैदिक माने जाते थे। यही कारण है कि साख्य-दर्शन जो ब्राह्मण परम्परा की देन था उसे यज्ञ का प्रतिरोव करने के कारण कुछ लोग अवैदिक एवं श्रमण परम्परा की श्रेणी मे मानने लगे थे।

यज्ञ प्रतिरोध के साथ ही जातिवाद का विरोध एवं उसकी अतात्विकता की भावना अवैदिक परम्परा मे प्रवल रूप से फैल चुकी थी। ऋग्वेद के अनुसार—ब्राह्मण, प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुआ, क्षत्रिय वाहु से, वैश्य उदर से एवं शूद्र उसके पैरो से उत्पन्न हुआ।[१८] श्रमण परम्परा इस सिद्धान्त का कट्टर विरोध करके उसकी अतात्विकता सिद्ध कर रही थी। तथागत गौतम वुद्ध मनुष्य जाति की एकता का प्रतिपादन वहुत ही प्रभावशाली पद्धति से करते थे। वे जन्मना जाति के स्थान पर कर्मणा जाति के समर्थक थे।[१९] धीरे-धीरे इस विचार का प्रभाव उन क्षत्रियो पर भी पडा जो वैदिक परम्परा से सम्वद्ध थे। इसका प्रमाण महाभारत मे मिलता है।[२०] वे भी आचरण से ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता का उद्घोष करने लगे। वैदिक विचार धारा के साथ संघर्ष का तीसरा प्रधान कारण था समत्व भावना व धार्मिक

---

१६. विशेष वर्णन के लिए देखें 'संस्कृति के चार अध्याय' २ (रामधारीसिंह दिनकर)
१७. देखिए—भारत वर्ष का सामाजिक इतिहास।
(डा० वि० सी० पाण्डे) पृ० २३-२४
१८. ऋगवेद म० १० अ० ७ सू० ९१, म० १२
१९ सुत्तनिपात (वासेट्ठ सुत्त)
२०. महाभारत शाति पर्व २४५।११-१४

समानता। वैदिक परम्परा ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता को चरमकोटि पर पहुँचा कर अन्य वर्गों को उससे निम्न एव धार्मिक अधिकारो से वचित रखा। आरण्यक को एवं ब्राह्मणो ने ब्राह्मण की श्रेष्ठता के डिडिमनाद मे यहाँ तक कह डाला—समस्त देवता ब्राह्मण मे निवास करते हैं।[२१] वह विश्व का दिव्य वर्ण है।[२२] ब्राह्मण का जातीय अहंकार आकाश को चूमने लगा तो धीरे-धीरे अन्य वर्गों मे उसके प्रति विद्वेष एवं विरोध की आग सुलगने लगी। क्षत्रिय वर्ग ने उसकी श्रेष्ठता को चुनौती दी।[२३] उन्होंने कहा—श्रमण अपने गोत्र कुल आदि का अभिमान नही करता।[२४] वह सदा समता से युक्त रह कर सब मे समत्व दर्शन करता है।[२५]

ब्राह्मण की श्रेष्ठता के दो आधार स्तभ थे। एक याज्ञिक कर्मो मे उसकी अनिवार्यता तथा दो—ज्ञान मे श्रेष्ठता। सत्ता के इन दोनो उद्गमो पर क्षत्रियो ने कडा प्रहार किया, याज्ञिक कर्मो का प्रतिरोध करके, एव आत्मविद्या मे अग्रगामी बन कर।[२६]

आत्मविद्या के पुरस्कर्त्ता

●

इतिहास मे इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि—भगवान महावीर से पूर्व भी मगध मे अनेक क्षत्रिय राजा एव राजकुमार तत्व ज्ञान, आत्मविद्या आदि गम्भीर विषयो के उपदेष्टा एव प्रचारक रहे हैं। अनेक ब्राह्मण कुमार तथा ऋषिजन इन राजाओ के पास आकर आत्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करते आये है। कुछ विचारको का मत हैं, भारतवर्ष मे आत्मविद्या के पुरस्कर्त्ता क्षत्रिय ही रहे हैं।[२७] विदेहराज जनक स्वय वेदो तथा उपनिषद् के गम्भीर विद्वान थे।[२८] कैकेय नरेश अश्वपति के पास

---

२१. एते वै देवा प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मणा —तैत्तिरीय सहिता १-७-३१

२२. दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मण। —तैत्तिरीय ब्राह्मण १, २, ६

२३. शतपथ ब्राह्मण १४, १, २३

२४. सूत्रकृताग १।२।१।१

२५. सुत्तनिपात २३।११

२६. भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास पृ० २५

२७. आत्म विद्या के पुरस्कर्त्ता क्षत्रिय ही थे—इसके प्रमाण मे देखे 'उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन,' (मुनि नथमल) पृ० १४।

अनेक ब्राह्मण कुमारो के विद्याध्ययन का उल्लेख भी छांदोग्य उपनिषद मे मिलता है ।[२९] श्वेतकेतु आरुणेय जैसे लब्धप्रतिष्ठित विद्वान ऋषि ने भी प्रवाहणजैवलि, जो कि क्षत्रिय कुमार थे, उनके पास वेदो व आत्मविद्या का ज्ञानप्राप्त किया ।[३०] ये उल्लेख सूचित करते हैं कि—उत्तर भारत मे जहाँ धार्मिक क्रियाकाण्डो, विधि—विधानों, एव तत्वज्ञान आदि का केन्द्र एवं नियोजक ब्राह्मण वर्ग रहा, वहाँ पूर्व भारत मे धीरे-धीरे राजसत्ता के साथ धार्मिकसत्ता भी क्षत्रियो के हाथ मे आती गई। क्षत्रियो ने आत्मविद्या पर वल दिया और यज्ञो के विरोध मे स्पष्ट कहा जाने लगा "प्लवा ह्येते अदृष्टा यज्ञ रूपा" ये यज्ञ आदि कर्म कमजोर नाव के समान है—इन से ससार सागर नही तिरा जा सकता । श्रेय और प्रेय का भेद बता कर —"अन्यच्छ्रेयो अन्यदुतैव प्रेयस्[३१] श्रेय-आत्महित, आत्मविद्या की साधना करने वाले को धीर, बुद्धिमान एव प्रेय—भौतिक-सुख समृद्धि, यज्ञ यागादि क्रिया काण्ड मे पडे रहने वाले को मद (मूर्ख) कहा जाने लगा ।[३२] उपनिषद् मे मुखरित होने वाले ये स्वर निश्चित ही दो विचार धाराओ के संघर्षों की सूचना देते हैं । और ये विचार धारायें वैदिक एव वेद विरोधी श्रमण धारायें ही रही होगी । ऐसा पूर्व उल्लेखो से स्पष्ट हो जाता है ।

पावा में यज्ञ का आयोजन

●

पच्चीस सौ वर्ष पूर्व पूर्वी भारत का धार्मिक इतिहास पढने पर यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इन दोनो विचार धाराओ मे उस समय काफी उथल-पुथल मची हुई थी । ब्राह्मण सत्ता को चुनौती दी जाने पर स्थान-स्थान पर उस वर्ग की ओर से इस प्रकार के विद्वाद् सम्मेलन एवं महायज्ञो की रचना होना भी आवश्यक हो गया था जिसमे उत्पन्न परिस्थितियो पर विचार किया जाय एव विखरते हुए

---

२८. वृहदारण्यक उपनिपद ४ । २ । १ ।

२९. छादोग्य उपनिषद् ५ । ११

३०. छादोग्य उपनिपद् ५।३

३१. कठोपनिषद् २।१

३२. श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतद् तौ संपरीत्य विविनक्ति धीर ।
श्रेयोहि वीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयान्मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।
—कठोपनिषद् २।२

प्रभुत्व को पुन स्थिर करने के लिए कोई स्थाई उपाय सोचा जाय। परिस्थितियो के अध्ययन से एव ग्रन्थो मे प्राप्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि आर्य सोमिल जो मगध का एक धनाढ्य एव विद्वान ब्राह्मण था, ब्राह्मण वर्ग का नेतृत्व भी उसके हाथ मे था और पूरे मगध एवं पूर्व भारत मे उसकी प्रतिष्ठा भी थी। पावापुरी मे उसने एक विराट महायज्ञ का आयोजन किया। जिसमे पूर्व भारत के वडे-वडे दिग्गज विद्वानो को उनके हजारो शिष्य परिवार के साथ निमन्त्रित किया गया। सम्भवत. इस महा-यज्ञ के अवसर पर वेद विरोधी विचारधारा के कडे प्रतिवाद के उपायो पर एव साधारण जनता को पुन वैदिक विचारो की ओर आकृष्ट करने के साधनो पर भी विचार करने की योजना वनी होगी। इस सम्पूर्ण महायज्ञ का नेतृत्व मगध के प्रसिद्ध विद्वान प्रकाण्ड तर्कशास्त्री 'इन्द्रभूति गौतम' कर रहे थे। अन्य अनेक विद्वानो के साथ अग्निभूति, वायुभूति आदि ग्यारह महापण्डित भी वहाँ उपस्थित थे।

गौतम : एक परिचय

●

इन्द्रभूति गौतम का जन्म स्थल था मगध का एक छोटा-सा गोबर ग्राम।[३३] उनकी माता का नाम पृथ्वी, एव पिता का नाम वसुभूति था। उनका गोत्र गौतम था।

गौतम का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ करते हुए जैनाचार्यों ने लिखा है—"गोभिस्तमो ध्वस्त यस्य"[३४] वुद्धि के द्वारा जिसका अन्धकार नष्ट हो गया है वह—गौतम। वैसे 'गौतम' शब्द कुल एव वश का वाचक रहा है। स्थानाग मे सात प्रकार के गौतम बताए गए हैं।[३५] गर्ग, भारद्वाज, आगिरस आदि। वदिक साहित्य मे गौतम नाम कुल से भी सम्वद्ध रहा है और ऋषियो से भो। ऋग्वेद मे गौतम के नाम से अनेक सूक्त मिलते हैं, जो गौतम राहूगण नामक ऋषि से सम्वद्ध है।[३६] वैसे गौतम नाम से अनेक ऋषि, धर्म सूत्रकार, न्याय शास्त्रकार, धर्म शास्त्रकार आदि व्यक्ति हो चुके हैं

---

३३. मगहा गोव्वरगामे ...... आवश्यक निर्युक्ति गा. ६४३. ६५६

३४. अभिधान राजेन्द्र कोश भा. ३ गौतम शव्द

३५. स्थानाग ७

३६. ऋग्वेद १. ६२. १३. (वैदिक कोश पृ० १३४)

अरुणउद्दालक, आरुणि आदि ऋषियो का भी पैतृक नाम गौतम था।[३७] यह कहना कठिन है कि इन्द्रभूति गौतम का गोत्र क्या था, वे किस ऋषि वश से सम्वद्ध थे ? पर इतना तो स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व वहुत विराट् एव प्रभावशाली था। दूर-दूर तक उनकी विद्वत्ता की धाक थी। पाच सौ छात्र उनके पास अध्ययन करने के लिए रहते थे। उनके व्यापक प्रभाव के कारण ही सोमिलार्य ने इस महायज्ञ का धार्मिक नेतृत्व इन्द्रभूति के हाथ मे सौप दिया था। विभिन्न जनपदो से हजारो विद्वान, व्रह्मकुमार उस महायज्ञ मे भाग लेने आए थे। मगध जनपद के हजारो नागरिक दूर-दूर से इस यज्ञ की ख्याति सुनकर देखने को उपस्थित हुए थे।

पावापुरी में भगवान महावीर

●

भगवान महावीर केवल ज्ञान प्राप्त कर जव पावापुरी मे पधारे तो हजारो नरनारी उनकी धर्म देशना सुनने को उमड पडे। देवताओ ने समवशरण की रचना की। आकाश मे भगवान महावीर की जयजयकार करते हुए असख्य देव, विमानो से पुष्प वर्षाते हुए समवशरण की ओर आने लगे।

निराशा और जिज्ञासा

●

यज्ञवाटिका में वैठे हुए विद्वानो ने आकाशमार्ग से आते हुए देवगण को देखा तो रोमाचित होकर कहने लगे "देखिए, यज्ञ माहात्म्य से आकृष्ट होकर आहुति लेने के लिए देवगण भी आ रहे हैं।" हजारो लाखो आँखें आकाश की ओर टकटकी लगाए देखती रहीं। पर जव देव विमान यज्ञ मण्डप के ऊपर से सीधे ही आगे निकल गये तो एक भारी निराशा से सवकी आँखे नीचे झुक गयी, मुख मलिन हो गये, और आश्चर्य के साथ सोचने लगे—"यह क्या है ? क्या देवगण भी किसी की माया मे फँसगए है ? या भ्रम मे पड गए हैं ? यज्ञमण्डप को छोडकर कहाँ जा रहे हैं ?" इन्द्रभूति ने देखा—यह तो उनके साथ मजाक हो रहा है। देवविमानो को देखकर उन्होंने ही तो यज्ञ की महिमा से मण्डप को गुंजाया था और अव उन्ही के अहकार

---

३७. भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश पृ० १९३-१९५

पर चोट करते हुए ये विमान सीधे आगे निकल गये। आर्य सौमिल से पूछा—'आर्य, आज पावापुरी मे कौन आया है ?

आर्य सोमिल—"आपने नही सुना ?"

इन्द्रभूति—'नही।'

सोमिल—क्षत्रिय कुमार वर्धमान। लगभग तेरह वर्ष पूर्व इन्होने गृह त्यागकर प्रवज्या ग्रहण की थी। राजकुमार अवस्था मे ही ये वर्णाश्रम, एव यज्ञविरोधी विचारो को प्रोत्साहित करने मे अग्रणी रहे हैं। अनेक राजन्यो एव शासको को इन्होंने अपने प्रभाव मे लिया है। और अव तपस्या के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर पावापुरी मे आकर अपने सिद्धान्तो के प्रचार-प्रसार मे यह विशाल आडम्वर कर रहे हैं। असख्य देवताओ को भी उन्होंने अपने वश मे कर लिया है।

इन्द्रभूति—अच्छा ! वेद विरोध। वर्णाश्रम विरोध! यज्ञ निषेध! और इसके लिए इतना संगठित व वलशाली-आन्दोलन। अच्छा, देखता हूँ मैं क्या शक्ति है वर्धमान मे। जो हमारे विरोध के समक्ष डट सके। आर्य सोमिल ! लगता है वर्धमान ने कुछ तपस्या करके ऐन्द्रजालिक सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। जनता को भ्रम एवं मायाजाल मे डाल रहा है। पर यह अन्धकार कव तक ? जब तक इन्द्रभूति के ओजस्व-वर्चस्व का प्रभाव पूर्ण सहस्राशु वहाँ पहुँच न जाय।

सोमिल—हाँ, सत्य है आर्य ! श्रमण वर्धमान की उठती हुई शक्ति का प्रतिरोध करना ही होगा। नदी के वहाव को प्रारम्भ मे ही मोड देना चाहिए अन्यथा वह वल पकड लेता है। श्रमण वर्धमान के पीछे अनेक क्षत्रिय शासको का पृष्ठ वल है। वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक जो प्रारम्भ से ही हमारी वैदिक परम्परा के विरोधी रहे हैं, वर्धमान के मातुल है। मगध, वैशाली, कपिलवस्तु आदि अनेक जन पदो मे वेद विरोधी विचारो का तूफान उठ रहा है।[३८] और इधर श्रमण वर्धमान भी केवल्य प्राप्त करके पावा मे आ चुके हैं। सहस्रो देवगण भी इनके उपदेश सुनने

---

३८. भगवान महावीर के लगभग १० वर्ष पश्चात् बुद्ध ने वोधिलाभ प्राप्त किया। जव भगवान महावीर को कैवल्य हुआ तव बुद्ध को तपस्या करते हुए ३ वर्ष हो चुके थे। बुद्ध के गृह त्याग की मगध मे काफी हलचल थी —देखिए आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन—पृ० ११७

सभा की ओर दौडे जा रहे हैं। विद्वद्वर्य ! जिस स्थिति पर विचार करने के लिए हमने इस महायज्ञ का आयोजन किया था उस स्थिति की उग्रता आज हमारे समक्ष स्पष्ट हो रही है। और हमारे इस आयोजन को प्रभावहीन करने के लिए ही श्रमण वर्धमान पावापुरी मे आकर विराट् धर्म सभा कर रहे हैं।

इन्द्रभूति —आर्य सोमिल ! हम इस वढती हुई धर्म विरोधी भावना का प्रतिरोध करेंगे। जव तक इन्द्रभूति जैसा विद्वान् आपके समक्ष विद्यमान है इस आयोजन को कोई प्रभावहीन नही कर सकता। मैं स्वय वर्धमान से शास्त्रार्थ करूँगा, उन्हे पराजित करके अपना शिष्य वनाऊँगा और देखते ही देखते वैदिक धर्म की वैजयन्ती आकाश मण्डप को चूमने लगेगी।

इन्द्रभूति के कथन पर आर्य सोमिल के साथ हजारो विद्वानो, छात्रो एव जनता ने—"अखण्ड भूमण्डल वादि-चक्रवर्ती आर्य इन्द्रभूति की जय" नाद से यज्ञ-मण्डप को गुँजा दिया।

इन्द्रभूति का मन अहकार व धर्मोन्माद से मचल उठा था। वे श्रमण वर्धमान को पराजित करने के लिए जनता के समक्ष कृतसकल्प हुए।

समवशरण की ओर

इन्द्रभूति का पाडित्य अद्वितीय था, वेद एव उपनिषद् का ज्ञान उनकी चेतना के कणकण मे छाया हुआ था। समस्त दर्शन, न्याय, तर्क, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि की सूक्ष्मतम गुत्थियाँ सुलझाना उनके वाए हाथ का खेल था। ज्ञान के साथ जिज्ञासा वृत्ति उनकी अपूर्व विशिष्टता थी। आर्यसोमिल की प्रेरणा, विद्वानो की प्रशसा एवं धर्मोन्माद के कारण वे श्रमण वर्धमान से वादविवाद करने चल पडे। किन्तु इन सव वातो के साथ ही साथ एक गूढ प्रश्न, अनवूझ जिज्ञासा उनके मन को उद्वेलित कर रही थी और वही उनको खीच रही थी। श्रमण वर्धमान का प्रभाव और उनकी सर्वज्ञता की वात उन्होने अपने कानो से सुनी, असख्य-असंख्य देव विमानो को उनकी धर्मसभा मे जाते आँखो से देखा, तो उनकी विद्वत्ता का अहकार भीतर ही भीतर सिहर उठा। उनका मन श्रमण वर्धमान के प्रति खिचने लगा। एक-विचित्र आकर्षण उनके मन मे जगा। अनुभव हुआ—जैसे उनका अतरग श्रमण वर्धमान की ओर खिचा जा रहा है। जो समाधान आज तक नही मिला, वह वहाँ मिल सकता है।

जो प्रश्न आज तक अनछूए रहे, उनका निराकरण वहाँ हो सकता है। इन्द्रभूति का मन भीतर-ही-भीतर आन्दोलित होने लगा और वे अपने पाँच सौ शिष्यो के साथ यज्ञ विधि को सम्पन्न करने से पूर्व ही भगवान महावीर के समवरशण महसेन वन की ओर वढ गये।[३९]

• •

३९ दिगम्वर आचार्य गुणचन्द्र के मतव्यानुसार इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के समवशरण मे स्वत प्रेरित होकर नही, किन्तु सौधर्मेन्द्र के द्वारा कि "तुम वहाँ जाकर अपने सशय का निराकरण करो" इस प्रकार प्रेरणा करके लाये जाते हैं—

"दृष्ट्वाकेनाप्युपायेन समानीयान्तिकं विभोः,"

—महा० उत्तर ४७।३५९

खण्ड : २

भारतीय चिन्तन की पृष्ठभूमि

●

- इन्द्रभूति का सशय ●
- जटिल प्रश्न ●
- विविध मत ●
- देहात्मवाद ●
- इन्द्रियात्म वाद ●
- मनोमय आत्मा ●
- प्रज्ञानात्मा ●
- चिदात्मा ●
- इन्द्रभूति की बेचैनी ●

भारतीय चिन्तन की पृष्ठभूमि

इन्द्रभूति का संशय

इन्द्रभूति गौतम अपने युग के, अपनी परपरा के एक समर्थ एव प्रभावशाली विद्वान थे। श्रमण भगवान महावीर की ख्याति, देवकृत अतिशय एव सर्वज्ञता की बात उनके हृदय को अज्ञात रूप से उनके प्रति आकृष्ट करने लगी थी। उनकी अन्तश्चेतना मे प्रवल जिज्ञासा थी, किसी भी विषय को, नवीन तथ्य को समझने-परखने के लिए वे सदा उत्सुक रहते यह उनका सहज स्वभाव था, जो आगमो मे स्थान-स्थान पर आए उनके प्रश्नो से ध्वनित होता है। प्रत्यक्ष रूप मे भले ही वे अपनी परम्परा के प्रतिरोधी श्रमण भगवान महावीर की ओर वाद विवाद की भावना लेकर बढ़े हो, उन्हे पराजित कर अपनी विद्वत्ता एव प्रभाव का डका चारो ओर वजाने की भावना उनमे रही हों, किन्तु आगे की घटना स्पष्ट कर देती है कि उनके भीतर जीवित ज्ञान चेतना थी, सत्य की प्रवल जिज्ञासा थी, जो जीर्ण-शीर्ण परम्परा के मोह को, क्षण भर मे नष्ट करके ज्ञान का विमल आलोक प्राप्त कर धन्य हो गई।

प्राचीन आगम ग्रन्थो एव कल्पसूत्र तक मे इस वात का कोई वर्णन नही है कि इन्द्रभूति जैसे विद्वान भगवान महावीर के पास किस कारण से आए, कैसे प्रवुद्ध होकर प्रव्रजित हो गए? सर्वप्रथम आवश्यकनियुक्ति मे आचार्य भद्रवाहु ने एक

गाथा मे गणधरो के मन की शकाओ का उल्लेख किया है।[1] जिनका समाधान भगवान महावीर ने किया, और वे अपने-अपने शिष्य परिवार के साथ प्रव्रजित हुए। सभवत यह उल्लेख ही वह पहली कडी है जो गणधरो एव महावीर के सवाद को दार्शनिक भूमिका से जोडती है।

जटिल प्रश्न

●

तत्कालीन विचार सूत्रो का परिशीलन करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि उस युग मे आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचार क्षेत्र मे वहुत वडी उथल-पुथल छाई हुई थी। सैकडो विचारक, सैकडो विचारधारायें और सव अपनी अपनी विचारधारा को ही सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे थे। जिधर जाओ, उधर विचारो का एक कोलाहल छाया हुआ था, सामान्य श्रद्धालु ही नही, किन्तु वडे से वडा विद्वान भी उस स्थिति मे यह निर्णय नही कर पाता कि क्या सत्य है, क्या असत्य है ? आत्मा एवं व्रह्म का एक ऐसा जटिल विषय था जिसको एक ओर एकान्त जड एवं अस्तित्व-हीन सिद्ध किया जाता था तो दूसरी ओर एकात चैतन्य एव अद्वैत सत्ता के रूप मे स्वीकार किया जा रहा था। वेद एव उपनिषद साहित्य मे इस प्रकार के सैकडो विरोधी विचार सामने आने के कारण ही संभव है इन्द्रभूति जैसे दिग्गज विद्वान भी आत्मा के सम्वन्ध मे भीतर ही भीतर सशयाकुल रहे हो, और जव भगवान महावीर द्वारा उनके सशय का समाधान हुआ तो उनका लगा हो, मन का काटा निकल गया, हृदय सरल एव सही स्थिति का अनुभव करने लगा है और इस कृतज्ञता मे वे भगवान के पास प्रव्रजित हो गये हो। इन्द्रभूति गौतम के मन मे सशय था, जीव है या नही ! इस प्रश्न का भगवान महावीर ने तर्क शुद्ध समाधान किया और इन्द्रभूति भगवान के शिष्य वन गये। इन्द्रभूति के इस सशय की पृष्ठभूमि क्या थी इसे समझने के लिए हमे भारतीय दर्शन मे आत्मविचारणा की पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है, उसी पृष्ठ भूमि पर हम भगवान महावीर के तार्किक समाधान का सही महत्त्व समझ पायेंगे।

---

१. [1]जीवे [2]कम्मे [3]तज्जीव [4]भूय [5]तारिसय [6]वध मोक्खे य,
[7]देवा [8]णेरइय या [9]पुण्णे [10]परलोय [11]णेव्वाणे।

—आवश्यक नि० ५९६

विविध मत

सूत्र कृताग[२] मे आत्मा के सम्बन्ध मे विविध विचारधाराओ का दिग्दर्शन कराया गया है। कुछ दार्शनिक इस जगत के मूल मे पाँच महाभूतो की सत्ता मानते थे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एव आकाश के समिलन से ही आत्मा नामक तत्व की निष्पत्ति होती है।[३] पालि ग्रन्थो मे भी इसी प्रकार के दार्शनिको का उल्लेख है जो चार तत्वो से आत्मा की चेतना की उत्पत्ति मानते थे।[४] आचाराग सूत्र मे आत्मा के लिए भूत, प्राण, मत्व[५] आदि शब्दो का प्रयोग भी आत्म सम्वन्वी इस विचारणा की एक अस्पष्ट उत्क्राति की सूचना देते हैं। ऋग्वेद मे एक ऋषि की पुकार है—जो आत्मा के सम्बन्ध मे विचार करते-करते विचारो की भूलभूलैया मे खो जाता है और फिर पुकार उठता है—"मैं कौन हूँ, यह भी मुझे मालूम नही।'[६] कही सत् को, कही असत् को इस जगत का मूल माना गया, और फिर सशय हुआ तो चितक कह उठा—'वह न असत् था न सत्' वह क्या है यह कहना कठिन है।'[७] दार्शनिक चिन्तन की इस उलझन मे कभी पुरुष को, कभी प्रकृति को, कभी आत्मा को, कभी प्राण को, कभी मन को आत्मा के रूप मे देखा गया फिर भी चिंतन को समाधान नही मिला और वह निरतर आत्म-विचारणा मे आगे से आगे वढता रहा।

देह-आत्मवाद

अपने भीतर जो विज्ञान एव चेतनामय स्फूर्ति का अनुभव होता है, वह क्या है? यह अनुभूति यह सवेदन जो समस्त देह मे व्याप्त है और अन्य जड पदार्थों

---

२. सूत्रकृताग १-१-१-७ से ८

३. सति पच महब्भूया इहमगेसिमाहिया।
पुढवी आउ तेऊ वा वाउ आगास पचमा।
—सूत्र १-१-१-७

४. ब्रह्म जालसुत्त

५. (क) आचाराग १।१।२।१५ (ख) भगवती १।१०

६. न वा जानामि यदिव इदमस्मि।—ऋग्वेद १. १६४.३७

७. ऋग्वेद १०।१२९

से अपने को भिन्न अनुभव कराती है वह आखिर क्या है ? यह प्रश्न अनादि काल से बुद्धि को झकझोरता रहा है।

छादोग्य उपनिषद मे[८] एक कहानी आती है कि "एक वार असुरो का स्वामी वैरोचन और सुरो (देवो) का स्वामी इन्द्र, प्रजापति के पास आत्मज्ञान लेने को गये। प्रजापति ने उन्हे पानी के एक कुंड मे अपना प्रतिबिम्ब दिखला कर कहा—'इस जल मे क्या दीख रहा है ?' उत्तर मे उन्होने कहा—'इस जल कुंड मे हमारा नख-शिख प्रतिविम्ब दिखाई दे रहा है।' प्रजापति ने कहा—"जिसे तुम देख रहे हो वही आत्मा है।" इस उत्तर से वैरोचन ने यह जाना 'देह' यही आत्मा है और असुरो मे इस 'देहात्मवाद' का उसने प्रचार किया। इन्द्र को इस उत्तर से सन्तोष नही हुआ। तैत्तिरीय उपनिषद मे भी इसी प्रकार का एक विचार मिलता है, अन्न से पुरुष उत्पन्न होता है, अन्न से ही उसकी वृद्धि होती है और अन्न मे ही वह लय हो जाता है, अत पुरुष अन्नरस मय ही है—पुरुषोऽन्न रसमय।[९]

उपरोक्त विचार को ही जैन एव बौद्ध ग्रन्थो मे—'तज्जीव तच्छरीरवाद' कहा गया है।[१०] द्वितीय गणधर अग्निभूति को इसी विषय मे सदेह था। बौद्ध ग्रन्थ पायासी सुत्त एव जैनआगम रायपसेणीसूत्र मे जिस नास्तिक राजा पायासी, पएसी का उल्लेख आता है वह इसी 'तज्जीव तच्छरीरवाद' देहात्मवाद का प्रवल समर्थक था। उसने अनेक तर्क एव परीक्षाओ के आधार पर देह एव आत्मा का ऐक्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था। प्रदेशी का दादा भी इस विचार धारा का कट्टर समर्थक था, ऐसा रायपसेणी सुत्त से विदित होता है।[११] और इसी विचार का मूल तैत्तिरीय उपनिषद् एव ऐतरेय आरण्यक मे भी प्राप्त होता है।

इन्द्रियात्मवाद

देह को, भूत को ही आत्मा मानने से जिन चितको को सतोष नही हुआ, उनका चिंतन आगे वढा, और जब शारीरिक क्रियाओ का निरीक्षण करने लगे तो प्राण-

८. छादोग्य उपनिषद् ८।८
९. तैत्तिरी० २।१।२०
१० सूत्रकृतांग १।१।१।११, ब्रह्मजाल सुत्त।
११. रायपसेणी सुत्त ६१—'मम अज्जए होत्था अधम्मिए'

शक्ति पर उनका चिंतन टिका होगा, और प्राण को वे आत्मा मानने लगे होगे, इसलिए उन्होने जीवन की समस्त क्रियाओ का आधार प्राण को ही बताया।[१२] छाँदोग्य उपनिषद्[१३] मे कहा है—"विश्व मे जो कुछ भूत समुदाय है, वह प्राण पर ही टिका हुआ है। बृहदारण्यक के एक वचन से यह भी स्पष्ट होता है कि—'मृत्यु इन्द्रिय शक्ति को नष्ट कर देता है, इसलिए सब इन्द्रियाँ मिलकर 'प्राण' रूप मे प्रतिष्ठित हो गई।' **प्राणरूपमेव आत्मत्वेन प्रतिपन्ना** —[१४]अत प्राण इन्द्रिय का सामष्टिक रूप माना गया और प्राण या इन्द्रिय को ही जीवन एव जगत का आधार मानकर एक प्रकार का समाधान प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। जैन आगमो मे भी इस बात का सकेत मिलता है कि इन्द्रियो को प्राण मानने की प्राचीन मान्यता चल रही थी और सभवत उसी आधार पर दश प्राणो मे इन्द्रियो को 'प्राण' संज्ञा से अभिहित किया गया।[१५]

मनोमय-आत्मा

•

आत्मा को भौतिक रूप मे देखने वाले विचारक इस प्रकार विभिन्न दृष्टियो से एक चिंतन धुरी पर घूम रहे थे। कुछ आत्मा को देह रूप मे मानते थे, कुछ इन्द्रिय एव प्राण रूप मे। किन्तु यह प्रश्न फिर भी अटका हुआ था कि यदि आत्मा इन्द्रिय रूप ही है, तो वह मन के सम्पर्क के विना ज्ञान क्यो नही कर सकती? और इन्द्रिय-व्यापार के अभाव मे भी चिंतन की प्रक्रिया को चालू रखने वाली कौनसी शक्ति है? इसी प्रश्न ने दृष्टि को आगे वढाया, देह एव इन्द्रियो से परे—मन का अस्तित्व उभरा और दार्शनिको ने उसे 'आत्मा' की सज्ञा दी। तैत्तिरीय उपनिषद् मे कहा गया है—प्राणरूप आत्मा अन्नमय आत्मा का अन्तरात्मा है, और मनोमय आत्मा प्राणमय आत्मा का अन्तरात्मा है।[१६] यह बात दूसरी है कि वाद मे मन के भौतिक

---

१२ प्राणो हि भूतानामायु —तैत्तिरीय उपनिषद् २।२।३

१३. प्राणो वा इद सर्व भूत यदिद—छादोग्य० ३।१५।४

१४ बृहदा० (शाकर भाष्य) १।५।२१ पृ० ३७०

१५. (क) भगवती सूत्र ५।१ (ख) ज्ञातावर्म कथा २

१६. प्राणमयादन्योऽन्तरआत्मा मनोमय ।—तैत्तिरीय २।३।१

एव अभौतिक स्वरूप के सम्बन्ध मे न्याय-वैशेषिक आदि दार्शनिको मे काफी गहरा मतभेद खडा हो गया,[१७] किन्तु उसके सूक्ष्म एव सूक्ष्मतर रूप के कारण अधिकांश चिंतक उसे ही आत्मा मानते रहे हैं और इस सबध मे काफी पैने तर्क उपस्थित किये जाते रहे हैं। न्यायसूत्रकार ने एक तर्क दिया है कि 'जिन हेतुओ के द्वारा आत्मा को देह से भिन्न सिद्ध किया जाता है, वे समस्त हेतु आत्मा को मनोमय सिद्ध करते हैं। भिन्न-भिन्न इन्द्रियो द्वारा अनुभूत ज्ञान का एकत्र सधान मन ही करता है, मन सर्व विषयक है, अत वही आत्मा है। उससे भिन्न अन्य 'आत्मा' नामक तत्व मानने की आवश्यकता ही नही हैं।[१८] सभवत इस विचारधारा का प्रभाव उपनिषद् काल के प्रारम्भ मे अधिक रहा हो और उस प्रभाव के कारण अनेक ऋषियो ने मन की महिमा गाकर उसे ही ब्रह्म एव आत्मा का रूप दे दिया हो।[१९]

प्रज्ञानात्मा

●

मन को आत्मा रूप मे स्वीकार कर लेने पर भी दार्शनिको को इस प्रश्न से मुक्ति नही मिली कि इन्द्रिय एवं मन दोनो ही भौतिक हैं, अत. इनका सचालन करने वाला कोई अभौतिक तत्व अवश्य होना चाहिए। उस अभौतिक तत्व की खोज मे कुछ दार्शनिको ने आगे छलाग लगाई और वे मन से प्रज्ञा तक पहुँचे और 'प्रज्ञान' को 'आत्मा' के नाम से जानने लगे। 'प्रज्ञान आत्मा' के स्वरूप को जानने का उपदेश दिया जाने लगा।[२०] 'प्रज्ञा' को आत्मा स्वीकार करनेवाले दार्शनिक भौतिक से अभौतिक स्वरूप की ओर अवश्य आगे बढ़े, पर फिर भी उनके चितनशील मस्तिष्क शांत नही रह सके। एक प्रश्न बार-बार उन्हे उद्वेलित कर रहा था। ज्ञान का एक रूप वस्तुविज्ञप्ति रूप है, तो दूसरा अनुभव सवेदन रूप है। प्रज्ञा तो आत्मा का एक पहलू है, वेदन है, सवेदन के बिना वह अधूरा है। ज्ञान के पश्चात् भोग होता है, भोग अनुकूल

---

१७ (क) न्यायसूत्र ३।२।६१
(ख) वैशेषिक सूत्र ७।१।२३

१८. न्यायसूत्र ३।१।१६

१९ (क) मनो वै ब्रह्मेति—बृहदा० ४।१।६
(ख) मनोह्यात्मा, मनो हि लोको, मनो हि ब्रह्म—छादोग्य० ७।३।१

२०. कौषीतकी उपनिषद् ३।८

भी होता है प्रतिकूल भी। अनुकूल भोग आत्मा को सुख रूप होता है और उसकी चरम स्थिति है आनंद! 'प्रज्ञान' के साथ जब तक 'आनद' की स्थिति नही है तब तक आत्म विचारणा अपूर्ण है, यह भी एक विचार उठा और कुछ दार्शनिक आत्मा को 'आनंद रूप' मानने लगे। **आनन्द आत्मा**[२१] आनंद ही ब्रह्म है, वही आत्मा है, वही परमात्मा है। इस विचार ने धीरे-धीरे दर्शन को जो सिर्फ बौद्धिक व्यायाम तक ही सीमित था, धर्म, अर्थात् आत्मिक परितृप्ति की ओर उन्मुख किया, यह भी माना जा सकता है।[२२]

चिदात्मा

●

आनन्द को आत्मा मानने वाले दार्शनिको के समक्ष भी यह प्रश्न खडा ही रहा कि आनन्द की अनुभूति करने वाला तत्व 'आनन्द' से भिन्न होना चाहिए। 'आनन्द का अन्तरात्मा क्या है' इस प्रश्न पर जब चिंतन धारा बढी तो सम्भव है कुछ दार्शनिको ने कहा—देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, प्रज्ञान तथा आनन्द से भी जो परे है, वह आत्मा है।[२४] इस विचार ने आत्मा को 'चिद्' रूप मे उपस्थित किया। जो चैतन्य है, जो ब्रह्म है, वही आत्मा है—**सर्वं हि एतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म**[२५]—इस ब्रह्म को ही चेतन पुरुष मानागया। वह स्वय ज्योति स्वरूप, द्रष्टा विज्ञाता है। उसे किसी अन्य की अपेक्षा नही।[२६]

इस प्रकार आत्मा सम्बन्धी विचारणा मे भारतीय चिंतन मे एक विचित्रता, वहुविधमान्यता एव पूर्वापरविरोधी विचारो का ऐसा वातावरण छाया हुआ था कि किसी भी निश्चय पर पहुंच पाना बहुत कठिन था। एक ओर आत्मा को भूतात्मक मान कर नितात भौतिक एवं देह से अभिन्न सिद्ध करने वाले दार्शनिक अपनी विचार धारा के प्रचार-प्रसार एव खण्डन-मण्डन मे संलग्न थे, तो दूसरी ओर कुछ प्राणात्मक इन्द्रियात्मक, मनोमय, ज्ञानात्मक, आनन्दात्मक आदि रूपो पर ही विशेष वल देते

---

२१. आनन्द आत्मा—तैत्तिरीय २।५।१

२२ Nature of Consiousness in Hindu Philosohpy—P२०

२४. तैत्तिरीय उपनिषद् २।६

२५. माडुक्य उपनिषद् २

२६ वृहदारण्यक० ३।४।१२

आत्म-विचारणा

पूर्वाग्रह टूट गए

इन्द्रभूति गौतम जव तीर्थंकर महावीर की धर्मसभा मे पहुँचे तो उनकी मन स्थिति क्या रही होगी यह कहना कठिन है । महावीर के प्रति उनकी धारणाएं वहुत भिन्न थी । महावीर एक राजकुमार थे । वयालीस वर्ष के तेजस्वी युवक थे । इस तूफानी यौवन मे जिसप्रकार विजय एव राज्यविस्तार का उल्लास क्षत्रियो का महज मनोवेग माना जाता था उसीप्रकार इस युग मे अध्यात्म एव तत्वज्ञान की चर्चा तथा गृहत्याग एव सन्यास भी क्षत्रियकुमारो का एक रुचिकर विषय बन रहा था । अनेक क्षत्रियकुमार युवावस्था मे ही गृहत्याग कर सन्यास की ओर वढ रहे थे और अध्यात्मविद्या मे ब्रह्मऋषियो से भी दो कदम आगे जा रहे थे। वैदिक परम्परा मे गृहस्थ-ऋषि की परम्परा का प्राधान्य था, किन्तु क्षत्रियकुमारो ने इस परम्परा मे नई क्राति पैदा की । उन्होने गृहत्याग कर सन्यास—प्रव्रज्या ग्रहण की और वह भी जीवन के चतुर्थ आश्रम मे नही, किन्तु द्वितीय आश्रम मे ही । इस आध्यात्मिक उत्क्राति से ब्राह्मणो से क्षत्रियो की आध्यात्मिक श्रेष्ठता एवं तेजस्विता का प्रभाव चारो ओर फेल चुका था[1] और इन्द्रभूति गौतम पर भी वह प्रभाव किसी

---

१. इस सवध मे देखिए दीघनिकाय मे तथागत का कथन—"तथागत बुद्ध ने कहा "वाशिष्ठ ब्रह्मा सनत्कुमार ने भी गाथा कही है—गोत्र लेकर चलने वाले जनो

थे। इस चिंतन का अतिम स्वर था आत्मा की ब्रह्म रूप चिदात्मक स्थिति। एक ओर अद्वैतजडात्मा और दूसरी ओर अद्वैतचेतनात्मा—इन दो ध्रुवो के बीच मे निर्ग्रन्थ विचारधारा एक सामंजस्य उपस्थित कर रही थी। उसने जड एव चेतन दोनो को मौलिक तत्व माना। आत्मा को चेतन माना, पुद्‌गल को अचेतन! पुद्‌गल—कर्म आदि से संपृक्त अवस्था मे चेतन मूर्त है, तथा कर्म मुक्त अवस्था मे ज्ञानादि गुणो से युक्त अमूर्त।

इन्द्रभूति की बेचैनी

●

आत्म विचारणा की इस विषम स्थिति मे इन्द्रभूति जैसे विद्वान की प्रज्ञा भी किसी निर्णय पर नही पहुँच पा रही थी और इसी कारण कभी-कभी मन में यह प्रश्न मूल से ही अटक जाता कि—जिस आत्मा के संबंध मे इतनी अटकले लगाई जा रही हैं, वह वस्तुत क्या है? और कुछ है भी या नही? यदि कुछ है, तो आज तक उस संबध मे किसी ने तर्कसगत समाधान क्यो नही प्राप्त किया।

जिस प्रकार सामान्य व्यापारी को अपने हिसाब-किताब की एक छोटी-सी भूल भी चैन नही लेने देती, उसी प्रकार विद्वान् के मन को जब तक उसका संशय निर्मूल न हो जाये शान्ति प्राप्त नही हो सकती, अपनी सपूर्ण विद्वत्ता पर एक चोट सी प्रतीत होती है, और वह विद्वान के लिए किसी भी प्रकार सह्य नही होती। इन्द्रभूति ने सभवत अपने युग के बडे-बडे मनीषियो, विद्वानो और तर्कशास्त्रियो से वाद विवाद भी किया होगा। उनसे अपने सशय का समाधान भी चाहा होगा, पर कही से भी वह उत्तर नही मिला, जिसे प्राप्त करने को उनकी आत्मा तडप रही थी। वे किसी भी मूल्य पर अपनी शका का समाधान पाना चाहते थे और आज जब श्रमण महावीर की अलौकिक महिमा, उनकी सर्वज्ञता का सवाद, देव गण द्वारा पूजा अर्चा का यह समारोह देखा तो विजिगीषा के साथ एक प्रबल जिज्ञासा भी अवश्य उठी होगी। वे या तो वाद विवाद करके महावीर को वेदानुयायी बना लेना चाहते होंगे या फिर अपनी शका का समाधान पाकर उनका शिष्यत्व स्वीकार करने का संकल्प ले चुके हो। इस प्रकार की कुछ भावनाओ ने इन्द्रभूति को भगवान महावीर के समवशरण की ओर आगे बढाया।

● ●

खण्ड : ३

आत्म-विचारणा

- पूर्वाग्रह टूट गए
- संशय का उद्घाटन
- आत्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणो से असिद्ध
- आगम प्रमाण से भी सिद्ध नही
- आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव
- अहप्रत्यय
- गुण-गुणीभाव
- जीव की अनेकता
- वेद पदों की सगति
- जीव का नित्यानित्यत्व
- प्रव्रज्या
- तीर्थ प्रवर्तन

रूप मे पड चुका था। इन्द्रभूति आयु मे महावीर से ज्येष्ठ थे। महावीर लगभग बयालीस वर्ष के थे[2] जब कि इन्द्रभूति पचास को पार कर रहे थे।[3] अध्यात्मज्ञान मे भी वे महावीर से अपने को श्रेष्ठ समझ रहे होंगे। ब्रह्मत्व का गौरव जो कि अहकार का ही एक पर्याय था, उन्हे अपने को भारत का एक महानतम विद्वान, गुरु एव प्रभावशाली याज्ञिक तथा धर्मयोद्धा के रूप मे देख रहा था, और महावीर को एक नवोदित तत्वज्ञानी, अधिक से अधिक नौसिखिया धार्मिक मल्ल से अधिक नही मान रहा होगा। इसलिए वाद विवाद मे महावीर को चुटकियो मे पराजित करने का मनोवेग उनके भीतर मचल रहा होगा। किन्तु जब वे महसेन वन[4] के निकट पहुँचे, महावीर के समवसरण की अलौकिक छटा देखी, असख्य-असख्य देवताओ को उनके चरणो मे भक्तिपूर्वक वंदन करते देखा, उनकी दिव्य ध्वनि का मनोहारि घोष सुना। तो उनकी पूर्व धारणाए निरस्त हो गई। अभिमान, अहकार तथा मात्सर्य की भावनाओ का मालिन्य धुल गया। महावीर के प्रति उनके मन मे एक आकर्षण का भाव जगा, श्रद्धा की हिलोरें उठने लगी, और मन करने लगा जैसे अभी इनके चरणो मे सिर झुका कर समर्पित हो जायें। इन्द्रभूति समझ नही पा रहे थे

मे क्षत्रिय श्रेष्ठ है। जो विद्या एव आचरण से युक्त है, वह देव मनुष्यो मे श्रेष्ठ है।" मैं इसका अनुमोदन करता हूं।" दीर्घनिकाय ३।४। पृ० २४५। वृहदारण्यक उपनिषद् मे भी इस विचार की प्रतिध्वनि मिलती है—"क्षत्रिय से उत्कृष्ट कोई नही है। उसी से राजसूय यज्ञ मे ब्राह्मण नीचे बैठ कर क्षत्रिय की उपासना करता है। वह क्षत्रिय मे ही अपने यश को स्थापित करता है।"

—वृहदारण्यक १।४।११, पृ० २८६

२. (क) कल्पसूत्र सूत्र ११६, (ख) आचाराग २

३ आवश्यक निर्युक्ति गाथा ६५०

४ भगवान महावीर की प्रथम देशना (वैसे द्वितीय) एव तीर्थ प्रवर्तन पावापुरी के महसेन वन मे हुआ इस मान्यता के साथ दिगम्बर परम्परा मत भेद रखती है। कषायपाहुड की टीका (पृ०७३) के अनुसार भगवान महावीर एव गणधरो का वार्तालाप एव तीर्थप्रवर्तन राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर हुआ। यद्यपि केवल ज्ञान वैशाख शुक्ल दशमी को ऋजु वालुका नदी के किनारे हुआ इस बात का समर्थन वहाँ भी मिलता है—

वैशाखे मासि सज्योत्स्नदशम्यामपराह्णके

—महापुराणे उत्तर पुराण ७४।३५०

कि उनके मन पर क्या हो रहा है ? क्या महावीर की माया उनके मन को भी व्यामोहित कर रही है ? इन असख्य देवताओ एवं अगणित मनुष्यो को महावीर ने जडवत् स्तंभित कर रखा है ? यह क्या चमत्कार है ? क्या माया है ? और कैसे इन सब के मनोभाव जानकर उनका समाधान कर रहे हैं ? क्या वस्तुत ही ये सर्वज्ञ है ? सब के मन की बातें जान सकते हैं ? क्या मेरे मन की हलचल भी ये जान पायेंगे ? और अब तक जो मेरे मन मे एक सशय उठता रहा है उसका समाधान भी ये कर सकते है ? इन्द्रभूति इन विचारो मे खोये-खोये महावीर के निकट पहुंचे। तो एक धीर गभीर स्वर उनके कानो से टकराया "इन्द्रभूति! आखिर तुम मेरे निकट आ ही गये।"

संशय का उद्‌घाटन

●

इन्द्रभूति चौंके। महावीर मेरे नाम से भी परिचित हैं ? मुझे पहचानते भी है ? हाँ, आखिर कौन है इस मगध मंडल मे जो इन्द्रभूति को न पहचाने ? इन्द्रभूति ने गोर से तीर्थंकर महावीर की अतिशय पूर्ण मुखमुद्रा की ओर देखा, मन हुआ कि विनय नही तो, सास्कृतिक शिष्टाचार वश ही अभिवादन करूँ, तभी भगवान महावीर ने कहा—"आयुष्मन् इन्द्रभूति! इतने वडे विद्वान होकर भी तुम अपने मन का समाधान नही पा सके ? सब शास्त्रो का आलोडन करके भी उनका नवनीत टटोलते ही रह गये ? अब तक तुम्हे अपने आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध मे भी सदेह है ?[५] तुम सोच रहे हो कि यदि जीव (आत्मा) नामक कोई तत्व है तो वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो से सिद्ध क्यो नही हो सकता। जो प्रत्यक्ष सिद्ध नही, उसका अस्तित्व आकाशकुसुम की भाँति कभी भी सभव नही हो सकता ? क्या यह ठीक है ?"

आत्मा : प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से असिद्ध

●

इन्द्रभूति महावीर के द्वारा गुप्त मनोभावो का उद्‌घाटन सुनते ही अचकचा गए। सच, महावीर सर्वज्ञ हैं ? नही तो कैसे ये मेरे गुप्ततम मनोभावो को यो

---

५. जीवे तुह सदेहो ?—विशेष० १५४९

वतला सकते थे ? वे पहले क्षण ही महावीर के गूढतम प्रभाव मे आ गये। फिर भी अपनी वाद विधि के अनुसार महावीर से प्रश्नोत्तर करने को प्रस्तुत हुए और वोले—"हाँ ! मैं आपकी वाणी की यथार्थता को मानता हूँ। जीव के अस्तित्व विषय मे मुझे सदेह है, क्या आप जीव के अस्तित्व मे विश्वास रखते हैं, और उसे तर्क, हेतु एव प्रत्यक्षादि प्रमाण के द्वारा सिद्ध कर सकते है ?[६] मैं तो मानता हूँ वह प्रत्यक्ष-सिद्ध नही है, जिस प्रकार घट-पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष मे दिखलाई देते हैं, उस प्रकार आत्मा का दर्शन प्रत्यक्ष मे नही हो सकता। और जो प्रत्यक्ष-सिद्ध नही, उस सम्वन्ध मे अनुमान प्रमाण भी नही चल सकता। चूँकि अनुमान का भी हेतु (चिन्ह) प्रत्यक्ष-गम्य होना चाहिए। घुएँ को देखकर अग्नि का अनुमान किया जाता है, चूँकि घुँआ जो कि अग्नि का अविनाभावि हेतु है, उसे हम प्रत्यक्ष मे कभी अग्नि के साथ देख चुके होते हैं, इसलिए घुएँ को देखकर परोक्ष अग्नि को अनुमान द्वारा जाना जा सकता है, पर आत्मा का ऐसा कोई हेतु हमारे समक्ष नही है, जिसका आत्मा के साथ अविनाभाविसवन्ध रहा हो और वह प्रत्यक्ष मे कभी देखा गया हो। इसलिए आत्मा न प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है और न परोक्ष—अनुमान से।

आगम प्रमाण से भी सिद्ध नही

●

अव रहा—आगम प्रमाण। आगम प्रमाण से भी आत्मा-जीव का अस्तित्त्व सिद्ध नही हो सकता। प्रथम तो आगम प्रमाण अनुमान प्रमाण का ही अंग है। फिर आगम प्रमाण स्वय एक विवादास्पद विषय है। स्वर्ग नरक आदि अदृष्ट विषयो का प्रतिपादन करने वाले आगम के कर्ता आप्तपुरुष ने भी आत्मा का कभी प्रत्यक्ष दर्शन किया हो, यह सम्भव नही है। और फिर उनके प्रतिपादन मे भी परस्पर विरोध है। कोई कहता है—यह ससार उतना ही है जितना इन्द्रियो द्वारा दिखलाई पडता है।[७] अर्थात् आत्मा इन्द्रियो से दिखलाई नही पडता इसलिए आत्मा नामक कोई स्वतन्त्र तत्त्व नही है। भूत समुदाय से विज्ञानघन उत्पन्न होता है और भूतो के विलय के साथ ही वह नष्ट हो जाता है। परलोक नाम की कोई वस्तु भी नही है।[८] इसके

---

६. अस्ति कि नास्ति वा जीवस्तत्स्वरूप निरूप्यताम्।—उत्तर पुराण—७४।३६१

७. एतावानेव लोकोऽय यावानिन्द्रिय गोचर। —चार्वाक दर्शन (षड्दर्शन ८१)

८. विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय
तान्येवानुविनश्यति न च प्रेत्य संज्ञाऽस्ति। वृहदा० २।४।१२

विरोध मे वेद एवं उपनिषद्[९] के अनेक वचन आत्मा को अमूर्त, अकर्ता, निर्गुण, भोक्ता आदि विभिन्न रूपो मे सिद्ध भी करते हैं—अत आगम परस्पर विरोधी होने के कारण प्रामाण्य नही हो सकते।

आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव

●

महावीर—"आयुष्मन् इन्द्रभूति ! लगता है विचारो की विविधता एव शास्त्र वचनो की गहराई के हार्द को न पकड पाने के कारण ही तुम अभी तक इस सशय से ग्रस्त रहे हो। तुम अपनी दृष्टि को स्वच्छ एवं पूर्वाग्रहो से मुक्त करो, आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव तुम्हे हो सकता है।[१०]"

इन्द्रभूति—(आश्चर्य के साथ) "आर्य ! क्या यह सम्भव है ! अप्रत्यक्ष अमूर्त आत्मा का मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता हूँ ?"

महावीर—"अवश्य ! तुम ही क्या ? प्रत्येक प्राणी आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है, कर रहा है !"

इन्द्रभूति की जिज्ञासा प्रवल हो उठी वे महावीर के और निकट आये एव अत्यन्त आतुरता से वोले—वह कैसे ?

महावीर—'जीव है या नही ? यह जो सशय है, वह तुम्हारी विज्ञान चेतना का ही एक रूप हैं। विज्ञान आत्मा का स्वरूप है।[११] संशय रूप विज्ञान का तुम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो, और यही आत्मा का अनुभव है—अत कहा जा सकता है कि तुम आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो। जिस प्रकार शरीर का सुख-दु ख स्व-सविदित है, उसके लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नही, उसीप्रकार विज्ञान रूप आत्मा का सशय के रूप मे तुम प्रत्यक्ष अनुभ्व कर रहे हो, तो फिर किसी प्रमाण की तुम्हे कोई अपेक्षा नही होनी चाहिए।"

---

९. (क) छादोग्य उपनिषद् ८।१२।१ (ख) मैत्रायणी उपनिषद् ३।६।३६

१०. गोतम ! पच्चक्खो च्चियजीवो ज संसयातिविण्णाण।
पच्चक्खं च ण सज्झ जध सुह-दुक्खं सदेहमि। —गणधरवाद गाथा १५५४

११ जीवो उवओग लक्खणो—उत्तराध्ययन

अहप्रत्यय

●

इन्द्रभूति—"आर्य ! सशय विज्ञान रूप मे आत्मा का प्रत्यक्षीभाव-वास्तव मे युक्ति-संगत है । मैं आपके वचन को मानता हूँ, किन्तु क्या संशय के अतिरिक्त किसी अन्य रूप मे भी आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है ?"

महावीर—"आयष्मन् ! मैंने किया है, मैं कर रहा हूँ, मैं करूँगा—इस प्रकार जो अपने कार्यों मे आत्म-वोध की ध्वनि आती है, 'अहं' रूप ज्ञान अनुभव होता है क्या वह प्रत्यक्ष आत्मानुभव नही है ?[१२]

यदि जीव नही हैं, तो 'अहं'-प्रत्यय—(मैं का वोध) कौन कर सकता है और कैसे कर सकता है ? 'मैं हूँ या नही' इस प्रकार की शंका करने वाला कौन है ? तुम ने सोचा इस विषय पर ? युक्ति पूर्वक विचार करने पर 'अहप्रत्यय' से तुम अपने आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हो ।[१३]

इन्द्रभूति—"आर्य ! 'अहं' का वोध जिस प्रकार 'आत्मा' का परिचायक माना जाता है, उसी प्रकार 'देह' का परिचायक भी माना जा सकता है ।'

महावीर—"इन्द्रभूति ! 'अहं' शव्द से यदि देह-वोध माना जाय तो फिर मृत शरीर में 'अहप्रत्यय' होना चाहिए, पर वैसा तो नही होता ! अत 'अहप्रत्यय' का विषय देह नही, किन्तु आत्मा—चैतन्य ही हो सकता है । अत जव 'अह-प्रत्यय' से तुम्हें आत्मवोव हो जाता है, फिर मैं हूं या नही, इस सशय को कोई अवकाश नही रहता, वल्कि 'मैं हूँ' यह आत्म—विश्वास की ध्वनि उठनी चाहिए ।"

---

१२ तुलना कीजिए—
सभी लोको को आत्मा के अस्तित्व की प्रतीति है, 'मैं नही हूँ' ऐसी प्रतीति किसी को भी नही है, यदि अपना अस्तित्त्व अज्ञात हो तो 'मैं नही हूँ' ऐसी प्रतीति भी होनी चाहिए ।   —ब्रह्मसूत्र शाकर भाष्य १.१.१

१३ न्यायमजरी (पृ० ४२६) मे अहप्रत्यय को ही आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान कहा गया है । न्यायवार्तिक (पृ० ३४१) मे भी इसे प्रत्यक्ष ज्ञान की श्रेणी मे लिया गया है ।

गुण-गुणी भाव

●

इन्द्रभूति—"आर्य ! 'सशय रूप विज्ञान' देह मे क्यो नही हो सकता ? जिस प्रकार आत्मा के साथ 'अह बुद्धि' मानी गई है, वैसे ही शरीर के साथ भी तो 'अह बुद्धि' है। शरीर जब तक प्राण को धारण करता है तब तक 'अह बुद्धि' का आधार उसे ही माना जाय तो क्या आपत्ति है ?"

महावीर—"इन्द्रभूति ! कोई भी गुण बिना गुणी के नही रह सकता।[१४] संशय स्वय ज्ञान रूप है, ज्ञान आत्मा का गुण है। गुण बिना गुणी के कैसे रहेगा ?"

इन्द्रभूति—"क्या ज्ञान देह का गुण नही हो सकता ?"

महावीर—"नही ! देह-जड है, मूर्त है, जबकि ज्ञान अमूर्त एव बोध रूप है। गुण अनुरूप गुणी मे ही रह सकता है। जैसा गुणी होगा, वैसा ही गुण होगा। यह नही कि गुणी अन्य हो, गुण अन्य। जड गुणी मे चेतन गुण नही रह सकता। यद्यपि शरीर आत्मा का सहचारी होने से उपचार से उसे भी आत्मा कहा जा सकता है, किन्तु वस्तुत शरीर एव आत्मा के लक्षण परस्पर भिन्न है, शरीर घट की भाँति चाक्षुष (आँखो से दिखाई दिया जाने वाला) है, इसलिए जड है, आत्मा इन्द्रियो से ग्राह्य नही है, क्यो कि वह अमूर्त है।[१५] ज्ञान भी अमूर्त है, अत वह भी इन्द्रियग्राह्य नही, किन्तु आत्म-सवेद्य है। अत ज्ञान रूप गुण का आधार कोई होना चाहिए और वह ज्ञानमय आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई हो नही सकता। इन्द्रभूति ! यह सिद्धान्त तुम्हे प्रत्यक्ष अनुभव से भी सत्य प्रतीत होना चाहिए, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो से भी एव मेरे आप्त वचन (सर्वज्ञ वचन) से भी तुम आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास कर सकते हो ?"

---

१४ भारतीय दर्शनो मे इस विषय पर तीन प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। पहला मत है न्याय-वैशेषिक दर्शन का। वे गुण-गुणी मे भेद मानते हैं। दूसरा मत है साख्य दर्शन का, वे गुण-गुणी मे अभेद स्वीकार करते हैं। तीसरे मत मे जैन एव मीमासक है। जैन दर्शन गुण-गुणी मे कथचित् भेद, कथचित् अभेद (भेदाभेद) मानता है। मीमासा दर्शन भी भेदाभेद की धारणा रखता है।

१५ नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा—उत्तरा० १४।१७

इन्द्रभूति—"आर्य ! जीव के अस्तित्व के सम्बन्ध मे आपके तर्क मुझे मान्य हो सकते हैं, फिर भी मैं यह कैसे विश्वास करूँ कि आप सर्वज्ञ है ? और यदि हैं भी तो क्यो आप का वचन सत्य ही हो, असत्य भी हो सकता है ?

महावीर—इन्द्रभूति ! तुम सर्वज्ञता मे विश्वास करो, या न करो, पर, तुम जानते हो कि मैं तुम्हारे मन के समस्त सशयो का निवारण कर रहा हूँ, और फिर मुझे किसी प्रकार का भय, मोह एवं राग-द्वेष नही है, कि जिस कारण मैं असत्य बोलूँ। मैंने अपने अन्तर दोषो का परिमार्जन किया है और आत्मा के सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष प्रतीति की है, अत मैं तुम्हे कहता हूँ कि तुम तर्क एव प्रमाण के साथ मेरे वचन पर भी विश्वास कर सकते हो, और फिर तुम्हारा आत्म-सवेदन तो सब से मुख्य प्रमाण है ही।"

इन्द्रभूति को लगा—जैसे तीर्थंकर महावीर की वाणी से उनके समस्त सशय छिन्न हो रहे हैं, हृदय मे ज्ञान का आलोक, जो अब तक एक पर्दे के पीछे छिपा हुआ था अब जैसे उभर रहा है, और उससे उद्‌भुत आलोक की छवि से मन-मस्तिष्क मे शात प्रकाश छा रहा है।

जीव की अनेकता

●

इन्द्रभूति ने भगवान महावीर से कहा—"आर्य ! आपने जिस चेतनालक्षण जीव की ससिद्धि की, उस जीव का रूप क्या है ? क्या वह अखड व्यापक सत्ता है या भिन्न स्वरूप मे हैं ?

महावीर—"इन्द्रभूति ! जीव अनंत है और प्रत्येक जीव अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। सामान्यत सिद्ध और ससारी जीव के दो भेद हैं। सिद्ध जीव कर्म मुक्त हैं अत उनके स्वरूप मे कोई भेद नही, ससारी जीव कर्म युक्त हैं, कर्मों के कारण उनमे भेद भी होता है। ससारी जीव के मूलत दो भेद होते हैं—त्रस और स्थावर।

इन्द्रभूति—वेद एवं उपनिपद् मे जीव को ब्रह्म कहा गया है, और उसे एक अखड रूप मे माना है। ससार मे जो भिन्न-भिन्न आत्माएँ है, उनमे उसी ब्रह्म का रूप प्रतिविम्बित होता है, जैसे कि जल मे एक चन्द्रमा के विभिन्न प्रतिविम्ब

झलकते हैं ।[१६] जिस प्रकार आकाश एक अखड विशुद्ध एव स्वच्छ हैं, किन्तु फिर भी जिसकी आँख रोगग्रस्त है (तिमिररोगी) वह उसमे विभिन्न रगो व दृश्यो की कल्पना करता है, उसी प्रकार एक ही विशुद्ध ब्रह्म अविद्या से कलुपित हृदय वालो को भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रतिभासित होता रहता है ।[१७]" इस प्रकार शास्त्र वचनो से तो जीव अखड एवं सर्वव्यापक एक रूप सिद्ध होता है और आप उसके भेद एवं भेदान्तर की वात कर रहे है यह कैसे युक्ति सगत है ?"

महावीर—इन्द्रभूति ! आकाश की भांति जीव अखड एवं एक नही हो सकता। ओकाश का एक ही लक्षण सर्वत्र दृष्टिगोचार होता है, जवकि जीव प्रतिपिंड मे भिन्न है और उनके लक्षण भी परस्पर भिन्न हैं। सुख-दुख, वध-मोक्ष प्रत्येक जीव का भिन्न है, यदि जीव एक है तो एक जीव सुखी होने पर सव जीव सुखी होने चाहिए। एक जीव को दु ख अनुभव होने पर सव जीवो को दु ख का अनुभव होना चाहिए। एक का मोक्ष होने पर सव की मुक्ति हो जानी चाहिए। पर ऐसा कभी होता नही, प्रत्येक जीव का सु.ख-दु ख भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, इसलिए यह तर्कसिद्ध वात है कि सव जीव परस्पर भिन्न है, चूँकि उनका लक्षण भिन्न भिन्न है।"

आकाश की भांति सर्वगत्व तथा एकत्व की कल्पना जीव मे करने पर सुख-दुख एवं वध-मोक्ष की व्यवस्था ही गडवडा जायेगी ।[१८] चूँकि

---

१६. एक एव हि भूतात्मा भूते-भूते प्रतिष्ठित ।
एकधा वहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥
—ब्रह्मविन्दु उपनिषद् ११

१७. यथा विशुद्धमाकाश तिमिरोपप्लुतो जन ।
सकीर्णमिव मात्राभिर्भिन्नाभिरभिमन्यते ॥
तथेदममल ब्रह्म निर्विकल्पमविद्यया ।
कलुपत्वमिवापन्न भेदरूप प्रकाशते ॥
—वृहदारण्यक भाष्यवार्तिक ३,४,४३-४४

१८. यहाँ पर यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि भारत के प्राय सभी प्रमुख दर्शन—न्याय—वैशेपिक, सांख्य-योग, मीमासक, वौद्ध तथा जैन आत्मा के अनेकत्व मे विश्वास रखते हैं, जवकि शाकर वेदात आत्मा को एक मानते हैं।

आकाश सर्वगत व्यापक है, इसलिये न उसमे कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व ! कर्ता, भोक्ता एवं मता (मनन करने वाला) जीव एक दूसरे से स्वतंत्र होता है, उसका अपना अस्तित्व अप्रतिवद्ध होता है, वह अकेला पुण्य-पाप करता है और अकेला भोक्ता है, यदि वह व्यापक है, तो न तो अकेला कुछ कर सकता है, और न अकेला भोग सकता है । अत जीव का अनेकत्व, अनन्त पना तथा असर्वगत्व—स्वतन्त्र रूप (शरीरव्यापी न कि सर्वव्यापी) तर्क से भी सिद्ध है और वही वध-मोक्ष, जन्म-मरण, कर्मफल भोक्तृत्व के सिद्धान्त का मूल आधार है ।[१९]

इन्द्रभूति—आर्य ! आपके युक्तिपूर्ण वचनो से जीव विषयक मेरा संदेह नष्ट हो रहा है । स्वय मुझे इस विषय मे प्रतीत हो रहा है कि 'जीव है ।' किन्तु फिर भी कभी-कभी वेद वाक्यो की विविधता मुझे पुन सन्देह को ओर ढकेल देती है, जैसे कि—"विज्ञानघन एव एतेभ्य" आदि कि यह विज्ञानघन

---

१९. आत्मा को व्यापक मानने के सबध मे इन्द्रभूति के मन मे जो ऊहापोह उपस्थित हुआ है उसका कारण औपनिषदिक चिंतन की विविधता है । उपनिषद् मे कही आत्मा को देह प्रमाण माना है, तो कही अंगुष्ठ प्रमाण एव कही सर्वव्यापक । कौषीतकी उपनिषद् (४-२०) मे आत्मा को देह प्रमाण वताते हुए कहा है—'जिस प्रकार तलवार म्यान मे व्याप्त है, उसी प्रकार आत्मा (प्रज्ञात्मा) शरीर मे नख एवं रोम तक व्याप्त है ।' वृहदारण्यक मे उसे चावल या जौ जितना वडा कहा है—यथा व्राहिर्वा यवो वा—(५।६।१) कठ उपनिषद् मे (२।२।१२) एव श्वेताश्वतरोपनिषद् (३।१३)—"अगुण्ठमात्र पुरुपोऽन्तरात्मा, सदा जनाना हृदये संनिविष्ट" मे अगुष्ठ प्रमाण माना है । मुंडक आदि अनेक उपनिपदो मे उसे व्यापक भी कहा गया है—'तदपाणि पाद नित्यं विभु सर्वगत'—(व्यापकमाकाशवत्)—मुण्डक० शाकर भाष्य १।१।६ । कोई ऋषि उसे 'अणोरणीयान महतो महीयान्' (मैत्र्युप० ६।३८ । कठोप० १।२।२० । छादोग्य ३।१४।३ । मानकर उसका ध्यान करने की वात कहते हैं । इस प्रकार के विरोधी विचार-चिंतन के कारण आत्मा के सबध मे इन्द्रभूति भी कुछ निर्णय नही कर पाए हो यह इससे ध्वनित होता है । न्याय-वैशेपिक, साख्य-योग, मीमासक तथा शकराचार्य आदि ने आत्मा को व्यापक माना है, तथा जैन दर्शन ने आत्मा को देह प्रमाण माना है ।

भूत समुदाय से ही उत्पन्न होता है और पुन. उसी मे विलय हो जाता है। परलोक नाम की कोई वस्तु नही है।"

वेद पदों की संगति

●

महावीर—"इन्द्रभूति! तुमने वेद पदो का अध्ययन किया है, पारायण भी किया है, पर मुझे लगता है तुमने अभी तक केवल शब्द पाठ किया है, वेदो के हृदय को नही समझा है, शब्दो मे सुप्त अर्थ को जागृत नही किया है, तभी ऐसी भ्राति तुम्हारे मन-मस्तिष्क को जकडे हुए हैं। किंतु यदि तुम दृष्टि को स्पष्ट करके इन पदो का अर्थ समझने का प्रयत्न करोगे तो आत्मा विषयक भ्राति इन्ही पदो से दूर हो सकती है।"

इन्द्रभूति—"आर्य प्रभु! आपके हृदयस्पर्शी वचनो से मेरा हृदय प्रबुद्ध हो रहा है, मेरी जिज्ञासा जागृत हुई है, कृपया आप ही इन वेद पदो का सही अर्थ बतलाने की कृपा करें।"

महावीर—आयुष्मन् इन्द्रभूति! "**विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न च प्रेत्य संज्ञाऽस्ति।**' यह जो वेदवाक्य (उपनिषद्) है, उसके आधार पर तुम मानते हो कि भूत समुदाय से विज्ञानघन समुद्भूत होता है, और फिर उन्ही मे लय हो जाता है, इसलिए परलोक—परभव मे जाने वाला कोई नही है, यह अर्थ वास्तव मे गलत है। विज्ञानघन शब्द से 'जीव' आत्मा का भाव ध्वनित होता है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ अनन्तानन्त ज्ञान पर्यायो का सघात है, अत उसे विज्ञानघन कहा जाता है। **भूतेभ्य समुत्थाय**'—इत्यादि पदो का तात्पर्य घट-पट आदि पदार्थ भूत हैं, वे ज्ञेय हैं, जैसे 'घट' देखने से घट विज्ञान उत्पन्न हुआ, 'पट' देखने से पट विज्ञान उत्पन्न हुआ। सिद्धान्त यह है कि ज्ञेय से ज्ञान की उत्पत्ति होती है। घट आदि भूतो से घट विज्ञान उत्पन्न हुआ, वह जीव की एक विशेष पर्याय है, इसलिये यह कहा जा सकता है कि यह घट विज्ञान रूप जोव घट से उत्पन्न हुआ, इसी प्रकार अन्य अनन्त भूत-पदार्थो के ज्ञान के साथ जीव तदनुरूप पर्याय धारण कर लेता है, अत वह उस पदार्थ से उत्पन्न हुआ ऐसा कहा जाता है।

'तान्येवानुविनश्यति'—इस पद का यह अभिप्राय होता है कि जो ज्ञान जिस ज्ञेय रूप पदार्थ में आलम्बन से उत्पन्न हुआ, उसके नष्ट होने पर वह ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। घटादि ज्ञेय के नष्ट हो जाने पर घट रूप विज्ञान भी नष्ट हो गया, और घट विज्ञान रूप पर्याय भी नष्ट हो गई। यह पर्याय विज्ञानघन रूप जीव से अभिन्न थी, अतः कहा जाता है कि अमुक रूप से ज्ञान होने पर विज्ञानघन का भी नाश हो गया। इसके साथ साथ यह भी समझ लेना है कि जब घट रूप ज्ञान पर्याय का नाश हुआ तो विज्ञानघन में अन्य पट आदि ज्ञान पर्याय का जन्म भी हो गया। एक ज्ञान पर्याय के विलय होने पर अन्य ज्ञान पर्याय उत्पन्न होती है, और इन दोनों ज्ञान पर्याय का आधार भूत विज्ञानघन-आत्मा विद्यमान होने से आत्मा की नित्यानित्यता सिद्ध होती है। यह विज्ञानघन आत्मा—उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वभाव से युक्त है। पूर्व पर्याय के विलय से उसका व्ययस्वभाव परिलक्षित होता है, अपर पर्याय के उद्गम से उत्पाद स्वभाव का परिचय मिलता है, तथा दोनों स्थितियों में विज्ञानघन आत्मा का अविनाशी ध्रुव स्वरूप स्थिर रहने से वह ध्रौव्य स्वभावी है।

इन्द्रभूति—आर्य ! जब आत्मा त्रिस्वभावी (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त) है तो फिर 'न प्रेत्य संज्ञास्ति' यह क्यों कहा गया ?

महावीर—इन्द्रभूति ! इस वचन का तात्पर्य है, जब आत्मा पूर्व पर्याय का त्याग करके अपर पर्याय को ग्रहण कर लेता है तब पूर्व पर्याय का ज्ञान उस में नही रहता। जब आत्मा घट ज्ञान का त्याग करके पट ज्ञान में प्रवृत्त हुआ तो क्या तब भी उसको 'घटज्ञान' या 'घटोपयोग' संज्ञा दी जा सकती है, नही न ! चूँकि घटोपयोग निवृत्त होने पर ही पटोपयोग प्रवृत्त होता है—अतः यह माना जा सकता है उस समय प्रेत्य-अर्थात् पूर्व पर्याय की सज्ञा नही रहती। यहाँ प्रेत्य से अर्थ पूर्व पर्याय समझना चाहिए, न कि परभव !

इन्द्रभूति—आर्य ! यह कैसे कहा जा सकता है कि उक्त वाक्य मे परलोक का निषेध नही है ?

जीव का नित्यानित्यत्व

●

महावीर—"आयुष्मन् ! वेद वाक्यो की पूर्वापर संगति देखने से यह विश्वास होता है कि उन्होने जीव का निषेध नही किया है, बल्कि देह से जीव को भिन्न माना है।[20] और 'अग्निहोत्रं जुहूयात् स्वर्गकाम ।[21] "ज्योतिर्यज्ञेन कल्पता स्वर्यज्ञेन कल्पताम्"[22] आदि वचनो मे यज्ञ आदि का फल स्वर्ग प्राप्ति बताया है । यदि भवान्तर मे जाने वाला कोई नित्य आत्मा नही है, तो फिर यज्ञ आदि कर्म का फल प्राप्त करने के लिए स्वर्ग आदि परलोक मे कौन जायेगा ? इसलिए तुम अपनी समस्त शकाओ का निराकरण करके यह दृढ विश्वास करो कि 'जीव है' वह नित्यानित्य है, जैसा कर्म करता है, उसके अनुसार फल भी प्राप्त करता है ।

प्रव्रज्या

●

तीर्थंकर महावीर के युक्तिसंगत वचनो से इन्द्रभूति गौतम के मन की गाँठ खुल गई, उनका सशय निर्मूल हो गया और ज्ञान पर गिरा हुआ पर्दा हट गया । उन्हे भगवान महावीर की सर्वज्ञता एव वीतरागता पर अटूट विश्वास हो गया । इन्द्रभूति के मन मे गुप्तसशय, जो उन्होने आज तक किसी से नही बताये, भगवान महावोर ने उन्हे खोलकर रख दिए और गौतम के मनोभावो का स्पष्ट उद्घाटन कर दिया । इसलिए गौतम महावीर की सर्वज्ञता पर श्रद्धा करने लगे । दूसरी बात भगवान महावीर की तत्व प्रतिपादन शैली बडी अद्भुत, युक्तिसगत एव वीतरागता का स्पष्ट दर्शन करानेवाली थी । आत्मा जैसे गभीर विषय पर इतनी लम्बी चर्चा करने पर भी उन्होंने कही भी यह नही कहा कि—मैं कहता हूँ इसलिए तुम मानो । उनकी शैली श्रद्धा प्रधान नहीं, बल्कि तर्क प्रधान शैली थी, जो जिज्ञासु के मन मे छिपी हुई शका को बाहर निकाल कर ले आती । इस वाद विवाद शैली मे जिस सौम्यता,

---

२०. बृहदारण्यक ४।३।६ मे कहा है कि 'ज्योतिरेवाय पुरुष ? आत्म ज्योतिरेवाय सम्राड्,—यह पुरुष आत्म ज्योति है ।

२१. मैत्रायणीउपनिषद् ३।६।३६

२२. यजुर्वेद १८।२९

विरोधी कार्य-सा ही था ।[२९] यही कारण है कि प्रारम्भ मे कुछ वैदिक आचार्यो ने कुछ स्थितियो मे स्त्री को सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दी थी ।[३०] किन्तु उत्तरवर्ती आचार्यो ने उसका कडा विरोध किया [३१] और उसे एक पाप कर्म तक की सज्ञा दी ।[३२] बौद्ध परम्परा भी प्रारम्भ मे स्त्री को दीक्षा देने के प्रश्न पर इन्कार करती रही । आनन्द के अत्यधिक आग्रह पर बुद्ध ने सर्व प्रथम प्रजापति गौतमी को दीक्षा दी ।[३३]

---

२९. उत्तराध्ययन सूत्र मे ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र ने नमिराजर्षि से कहा है—'राजन् ! गृहवास घोर आश्रम है, तुम इसे छोडकर दूसरे आश्रम मे जाना चाहते हो, यह उचित नही ।"　　　　—उत्त० ९।४२-४४

इस सम्वाद से प्रकट होता है कि न केवल स्त्रियो के लिए, बल्कि पुरुषो के लिए भी गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ माना जाता था। वाशिष्ट धर्मशास्त्रकार ने तो सब आश्रमो मे गृहस्थाश्रम की ही श्रेष्ठता प्रतिपादित की है—

चतुर्णामाश्रमाणा तु गृहस्थश्च विशिष्यते

—वाशिष्ट धर्मसूत्र ८।१४

३०. महाभारत १२।२४५ ।

३१. स्मृतिचन्द्रिका व्यवहार पृ० २५४ मे उद्धृत आचार्ययम का मतव्य

३२. अत्रिस्मृति १३६-१३७,

३३. एक बार बुद्ध कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम मे रह रहे थे। उनकी मौसी प्रजापति गौतमी उनके पास आई और बोली—भते ! अपने भिक्षु सघ मे स्त्रियो को भी स्थान दें ।' बुद्ध ने कहा—यह मुझे अच्छा नही लगता ।" गौतमी ने दूसरी बार और तीसरी बार भी अपनी बात दुहराई पर उसका परिणाम कुछ भी नही आया ।

कुछ दिनो बाद जब बुद्ध वैशाली मे विहार कर रहे थे, गौतमी भिक्षुणी का वेष बनाकर अनेक शाक्यस्त्रियो के साथ आराम मे पहुँची। आनन्द ने उसका यह स्वरूप देखा। दीक्षा ग्रहण करने की आतुरता उस के प्रत्येक अवयव से टपक रही थी। आनन्द को दया आई। वह बुद्ध के पास पहुँचा और निवेदन किया—भते ! स्त्रियो को भिक्षु सघ मे स्थान दें ।" दो तीन बार कहने पर भी कोई परिणाम नही निकला। अन्त मे आनन्द ने कहा—"यह महाप्रजापति गौतमी है, जिसने मातृ-वियोग मे भगवान को दूध पिलाया है, अत इसे अवश्य प्रव्रज्या मिले ।"

अन्त मे बुद्ध ने आनन्द के अनुरोध को माना, और कुछ नियमो के साथ उसे संघ मे स्थान देने की आज्ञा दी ।

—विनय पिटक, चुल्लवग्ग, भिक्खुणी स्कन्धक—१०, १, ४

किन्तु जैन परम्परा मे स्त्री की प्रव्रज्या के द्वार प्रारम्भ से ही उन्मुक्त कर दिये थे। भगवान-ऋषभदेव की पुत्रियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी इस अवसर्पिणी कालचक्र की आदि श्रमणी थी।[३४] भगवान अरिष्टनेमि के युग मे तो वासुदेव श्री कृष्ण की पद्मावती आदि अनेक महारानियो के प्रव्रज्या ग्रहण का उल्लेख प्राप्त होता है।[३५] नायाधम्मकहा,[३६] निरयावलियाओ,[३७] आदि मे इस प्रकार की अनेक घटनाओ के उल्लेख हैं। जैन परम्परा ने प्रारंभ से ही धार्मिक एव सामाजिक स्तर पर पुरुष तथा नारी को समान स्तर पर रखा। भगवान महावीर ने भी सर्व प्रथम उस क्रांतिकारी कदम से वैचारिक जगत् के साथ सामाजिक जगत मे नारी जागृति का एक नया साहसिक उदाहरण प्रस्तुत किया और आध्यात्मिक उत्क्राति के लिए नारी जाति को आह्वान किया।

आर्या चन्दना की प्रव्रज्या के वाद अनेक स्त्री पुरुषो ने जो कि भगवान महावीर के उपदेश से प्रवुद्ध हुए थे, किन्तु प्रव्रज्या ग्रहण करने मे स्वयं को असमर्थ समझ रहे थे, उन्होंने श्रावक के व्रत ग्रहण किए।[३८]

स्थानाग[३९] तथा भगवती[४०] आदि मे वताया गया है कि श्रमण, श्रमणी, श्रावक (श्रमणोपासक) एव श्राविका (श्रमणोपासिका) यह तीर्थ के चार अंग हैं। इन्ही से चतुर्विध सघ का रूप वनता है। उस चतुर्विध सघ की स्थापना भी भगवान महावीर ने इसी महसेन वन मे की।

---

३४. जवूद्वीप प्रज्ञप्ति ३।

३५. अतगढ सूत्र, वर्ग ६, ७, ८,

३६. नायाधम्मकहा . २-१-२२२,

३७. (क) निरयावलिया ४ वर्ग, (ख) आवश्यक चूर्णि २८६, २९१,

३८. त्रिषष्टिशलाका० १० । ५,

३९. स्थानाग ४ । ३

४०. तित्थ पुण चाउवन्नाइन्ने समण सघो—समणा, समणीओ सावया, सावियाओ।
—भगवती सूत्र शतक २०, उ० ८ सूत्र ६८२

समन्वय भावना और बहुश्रुतता का परिचय गौतम को मिला वह अभूतपूर्व था और भगवान महावीर की वीतरागता का स्पष्ट प्रमाण था। गौतम का मन और हृदय पूर्वाग्रहो से बधा हुआ नही था, आम्नाय एवं शिष्यपरंपरा का व्यामोह तिलभर भी उनके मन मे नही था। वे सत्य के जिज्ञासु थे, सत्य के शोधक थे, और जब भगवान महावीर के वचनो मे उन्हे सत्य की प्रतीति हुई, उनकी वाणी मे सत्य का साक्षात् दर्शन हुआ तो कुछ ही क्षणो मे उन्होने अपने समस्त पूर्व व्यामोहो को, सप्रदाय एव सप्रदायगत के चिन्हो का त्याग कर दिया। भगवान महावीर के चरणो मे हाथ जोडकर विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगे "भन्ते ! मैंने आपके तर्कयुक्त वचनो का श्रवण किया है, मेरे मन के सशयो का उच्छेद हो गया है, मैं आपकी वीतरागता पर श्रद्धा करता हूँ, आपके ज्ञान को लोक कल्याणकारी मानता हूँ। प्रभो ! मुझे भी अपना शिष्य बनाइये, अपनी आचार विधि की दीक्षा दीजिए और मुक्ति का सच्चा मार्ग दिखलाइए।"

इन्द्रभूति गौतम ने जब भगवान महावीर से शिष्य दीक्षा देने को प्रार्थना की तो सभवत उनके पाच सौ शिष्यो को भी आश्चर्य हुआ होगा। भगवान के वचनो पर उन्हे भी श्रद्धा एव विश्वास हुआ और वे भी गौतम के साथ ही भगवान महावीर के शिष्य बन गये।

तीर्थ प्रवर्तन

●

गौतम जब महावीर के शिष्य बने तो यह सवाद बिजली की भाँति चारो ओर फैल गया। और तब पावापुरी मे एकत्रित विशाल ब्राह्मण समुदाय मे अवश्य एक तूफान आया होगा, सब दिग्मूढ से सोचते रह गये होगे, 'अरे ! यह क्या ? इन्द्रभूति जैसा उद्भट विद्वान भी वर्धमान के इन्द्र जाल मे फँस गया ? सभवत उपस्थित सभी विद्वानो के मन मे एक खलबली मची होगी और महावीर के प्रति उत्कट जिज्ञासा भी उठी होगी। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि इन्द्रभूति के पश्चात् यज्ञ मडप मे उपस्थित अग्निभूति, वायुभूति आदि अन्य दस महापडित एक-एक करके अपने शिष्यो के साथ भगवान महावीर के समवसरण मे आये, वाद विवाद किया, और अन्त मे तर्क शुद्ध समाधान पाकर हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा को निछावर करके भगवान

महावीर के शिष्य बन गए।[२४] भगवान महावीर के द्वितीय समवसरण मे, एक ही दिन मे इस प्रकार ग्यारह महापडित एव उनके चवदहसौ चवालीस शिष्यो ने दीक्षा धारण की, और भगवान महावीर ने वैसाख सुदी ११ को धर्मतीर्थ की स्थापना की।[२५] इसी समय राजकुमारी चदना जो कौशाम्बी मे थी, भगवान महावीर का केवल ज्ञान सवाद सुनकर पावापुरी मे पहुँची।[२६] प्रभु के चरणो मे दीक्षा की प्रार्थना की और अनेक राजकुमारियो व कुटुम्बिनियो के साथ उसने भी दीक्षा ग्रहण की, और वह साध्वी समुदाय मे अग्रणी बनी।[२७] सभवत आर्या चन्दना की दीक्षा भी उस युग मे एक सामाजिक तथा धार्मिक क्राति का सूत्रपात था। चूँकि अब तक चली आई वैदिक परम्परा मे प्रथम तो नारी को वेदाध्ययन एव धार्मिक क्रिया काण्डो से दूर ही रखा गया था।[२८] फिर गृहत्याग कर सन्यास ग्रहण करना तो प्राय समाज-

---

२४. महाकुला महाप्राज्ञा सविग्ना विश्ववदिता।
एकादशाऽपि तेऽभूवन्मूलशिष्या जगद्गुरो ॥

—त्रिषष्टि० पर्व १० सर्ग ५

२५. श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार भगवान महावीर ने वैसाख-शुक्ल ११ को महसेन वन मे तीर्थ स्थापना की। जबकि दिगम्बर मान्यता इस सम्बन्ध मे भिन्न विचार प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार तीर्थंकर महावीर के साथ गणधरो का समागम कैवल्य के दूसरे दिन पावापुरी मे नही, किन्तु छियासठ दिन के बाद राजगृह मे हुआ, और वही तीर्थ प्रवर्तन हुआ। देखिए कषायपाहुड की टीका पृ० ७६। तीर्थ प्रवर्तन की तिथि भी श्रावण कृष्ण प्रतिपदा मानी गई है। देखिए—षट्खडागम धवला पृ० ६३

२६. त्रिषष्टिशलाका० पर्व १० सर्ग ५

२७. कल्पसूत्र (सुबोधिका) सूत्र १३५ सूत्र ३५६

२८. देखिए—(क) शतपथ ब्राह्मण १३, २, २०, ४,
(ख) अस्वतत्रा धर्मे स्त्री—गौतम धर्मसूत्र १८, १
(ग) अस्वतत्रा स्त्री पुरुष प्रधाना—वासिष्ठ ० ५, १
(घ) महाभारत, अनु० २०, १४,
(च) मनुस्मृति ९-३

संघ स्थापना के पश्चात् भगवान महावीर ने इन्द्रभूति आदि प्रमुख शिष्यों को सम्बोधित करके त्रिपदी [४१] का उपदेश किया। जिसे सूत्र रूप मे प्राप्त कर गणधरो ने उसकी विशाल व्याख्या के रूप मे द्वादशागी (१४ पूर्वो से युक्त) की रचना की।[४२]

• •

---

४१. (क) उप्पन्ने, विगए, परिणए—भगवती ५। ९

(ख) उप्पन्न विगय धुवपय तियम्मि कहिए जिणेण तो तेहिं।
सव्वेहिं वि य बुद्धीहिं वारस अंगाइं रइयाइं॥
—महावीर चरियं, (नेमिचन्द्र) पत्र ६९-२

(ग) जाते सघे चतुर्वेंव ध्रौव्योत्पाद व्ययात्मिकाम्।
इन्द्रभूति प्रभृताना त्रिपदीं व्याहरत् प्रभु:॥
—त्रिषष्टि० १०। ५

४२. (क) त्रिषष्टि ० १०। ५। १६५

(ख) महावीर चरिय (गुणचंद्र) प्रस्ताव ८ पत्र २५७-२

(ग) दर्शन-रत्न-रत्नाकर पत्र ४०३-१

खण्ड : ४

व्यक्तित्व दर्शन

•

श्रमण समता का प्रतीक •
बाह्य व्यक्तित्व •
सुन्दरता : एक पुण्य प्रकृति •
शरीर की ऊँचाई और सहनन •
मधुर व्यवहार •
तप साधना •
स्वावलम्बी श्रमण •
दिनचर्या •
दीप्त तपस्वी •
उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी •
विदेहभाव •
तपोलब्धि •
गौतम की ज्ञान संपदा •
मानसज्ञानी •
विनम्रता की मूर्ति •
सरलता का अक्षय स्रोत •
मधुर आतिथ्य •
निर्भीक शिक्षक •
कुशल उपदेष्टा •
प्रबुद्ध संदेशवाहक •
अनन्य प्रभु भक्त •
मुक्ति का वरदान •
महान् जिज्ञासु •
सराग उपासना •
पावा मे अंतिम वर्षावास •
कैवल्य एवं निर्वाण •

व्यक्तित्व दर्शन

श्रमण समता का प्रतीक

●

इन्द्रभूति गौतम का तलस्पर्शी ज्ञान गाभीर्य अपने आप मे जिस रिक्तता का अनुभव कर रहा था, उसकी पूर्ति भगवान महावीर की हृदयस्पर्शी वाणी ने कर दी। गौतम अब अपने पाडित्य की कृतकृत्यता अनुभव कर रहे थे। वे शुष्क क्रिया काण्ड से मुक्त होकर आत्मसयम एव आत्मनिदिध्यासन के आनन्द मार्ग की ओर वढ चुके थे। भगवान महावीर ने उनके मन की कुण्ठाओ को तोडकर जिस विशद ज्ञान की कु जी रूप त्रिपदी का ज्ञान उन्हे दिया, उससे गौतम के अन्तस् का समस्त अन्धकार दूर हुआ और एक दिव्य प्रकाश सर्वत्र बिखर गया। जिस प्रकार सूर्य के अनन्त आलोक को कोई सघन कृष्ण आवरण रोक रहा हो, और वह जैसे ही हट जाये वैसे ही अन्धकार के स्थान पर प्रकाश व्याप्त हो जाये ऐसा ही कुछ गणधर गौतम के समक्ष हुआ। वेद उपनिषद् आदि चतुर्दश विद्याओ का पारगामी अध्ययन कर लेने पर भी वे अपने आप को किसी अन्धकार मे भटकते हुए अनुभव कर रहे थे, हृदय मे एक रिक्तता, जीवन मे एक शून्यता अनुभव कर रहे थे। भगवान महावीर ने प्रथम परिचय मे ही गौतम के हृदय को टटोललिया, उनकी आत्मा की धडकन को पहचाना और श्रु त-शील के माधुर्य पूर्ण मार्ग का उपदेश दिया। गौतम के पास ज्ञान की कमी नही थी, किन्तु दृष्टि पर एक आवरण था, ऐकान्तिक आग्रह था। चारित्र के

नाम पर तो उनके पास केवल स्नान, पूजन यज्ञ-याग आदि नीरस क्रियाकाण्ड ही था। भगवान महावीर के चिन्तन पूर्ण वचनो से उनका ऐकान्तिक आग्रह टूटा, स्याद्वाद की अनेकान्त दृष्टि प्राप्त हुई और सामायिक आदि चारित्र का स्वात्म-लक्षी मार्ग भी मिला। आचार्य भद्रवाहु के उल्लेखनुसार भगवान महावीर ने अपना पहला उपदेश सामायिक चारित्र का दिया,[1] और उसी उपदेश से गौतम ने सम्पूर्ण चारित्र सम्वन्धी ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस उल्लेख का महत्व इस दृष्टि से भी है, कि ब्राह्मण एवं श्रमण सस्कृति मे सामायिक-अर्थात् 'समता' एक महत्वपूर्ण विभाजक रेखा थी। ब्राह्मण सस्कृति मे जहाँ ज्ञानोन्माद, जातीयगर्व, वार्णिक श्रेष्ठता आदि के अहकार से परिप्लुत वर्ग रात-दिन हिंसा प्रधान क्रिया काण्ड मे सलग्न रहता था, वहा श्रमण सस्कृति का मूल स्वर था '**समयाए समणो होई**'[2] समता के आचरण से ही श्रमण कहलाता है। श्रमण शब्द की व्याख्या भी इसी समत्व भावना को लेकर की गई है—'**'सम मणई तेण सो समणो**''[3] जिसका मन सम होता है वह श्रमण है। सामायिक का भी यही अर्थ है कि—"जिसकी आत्मा सयम, नियम एवं तप मे समाहित होगई है शान्ति को प्राप्त कर रही है, उसी को वस्तुत सामायिक होती है।"[4] कहना नही होगा, भगवान महावीर के इस समता धर्म का आश्चर्यजनक प्रभाव इन्द्रभूति के मन पर हुआ। उन्हे जीवन की एक अपूर्व स्थिति प्राप्त हो गई, एक ऐसा आत्मानन्द का शान्त मार्ग मिला, जिसमे कही कोई कटुता, द्वेप एव वैमनस्य की उष्मा तक नही थी। यही कारण है कि गौतम जैसा महान् पण्डित, विश्व विश्रुत तार्किक जव आत्म शान्ति के मार्ग का दर्शन कर पाया तो अपने समस्त पूर्व परि-कल्पित आग्रहो, एव क्रिया काण्डो को यो त्याग आया जैसे साँप कैंचुली का त्याग कर देता है—**महानागोव्व कंचुयं**—[5] और साधना के कठोरतम मार्ग पर सर्वात्मना समर्पित हो गया।

---

१. आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७३३-३५, ७४२-४५-४८
२. उत्तराध्ययन २५/३२
३. दशवैकालिक निर्युक्ति गा. १५४
यही गाथा अनुयोग द्वार १२९ मे आई है।
४. जस्स सामाणिओ अप्पा सजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइय होइ इइ केवलिभासिय।
—अनुयोग द्वार १२७ नियमसार १२७
५. उत्तरा० १९।८७

वाह्य व्यक्तित्व

●

जैसा पूर्व लिखा जा चुका है—इन्द्रभूति गौतम के सम्वन्ध मे भगवती सूत्र के प्रारम्भ मे एक वहुत ही महत्वपूर्ण परिचय दिया गया है। ठीक वही शव्दावली उपासक दशा[६] औपपातिक सूत्र[७] मे उट्ट कित की गई है। उस परिचय से ज्ञात होता है कि गौतम जितने वडे तत्त्वज्ञानी थे, उतने ही वडे साधक भी। श्रुत एव शील की पवित्र धारा से उनकी आत्मा सम्पूर्ण रूप के परिप्लावित हो रही थी। एक और वे उग्र तपस्वी घोर तपस्वी जैसे विशेषणो से विभूषित किये जाते है, तो दूसरी ओर **'सव्वक्खर सन्निवाई'** वर्णमाला के समस्त अक्षर संयोगो के विज्ञाता, समस्त वाङ्मय के अधिकृत ज्ञाता भी वताये गये हैं। उनके तत्वज्ञान एव साधक जीवन की स्वर्णिम रेखाओ को अकित करने से पूर्व हम गणधर गौतम के वाह्य व्यक्तित्व का सामान्य परिचय भी भगवती सूत्र की शव्दावली से प्राप्त कर लेते हैं।

सुन्दरता : एक पुण्योपलब्धि

●

मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि किसी भी व्यक्तित्व का अन्तरंग दर्शन करने से पूर्व ही दर्शक पर उसके वाह्य व्यक्तित्व (Personality) का प्रभाव पडता है। प्रथम दर्शन मे ही यदि व्यक्ति प्रभावित हो जाता है तो उसके भावीसम्पर्क भी उस व्यक्तित्व से अवश्य प्रभावित रहते हैं। गुजराती मे कहावत है—"जेना जोया नथी मरता तेना मार्‍या सू मरे"—परिचय एव प्रभाव की दृष्टि से पहला सम्पर्क ही महत्वपूर्ण माना जाता है। यदि व्यक्ति के चेहरे पर ओज, प्रभाव चमक रहा हो, उसकी आकृति मे सौन्दर्य छलक रहा हो, आँखो मे तेज, मुख पर मदस्मित, शारीरिक गठन की सुभव्यता और सुन्दरता हो तो भले ही उस व्यक्तित्व की गहराई मे कुछ हो या न हो, पर उसका पहला दर्शन व्यक्ति को अवश्य ही प्रभावित कर देता है। यदि वाह्य सुन्दरता के साथ आन्तरिक सौन्दर्य भी परिपूर्ण हो तो वहाँ 'सोने मे सुगन्ध' की उक्ति चरितार्थ हो जाती है। यही कारण है कि ससार मे जितने भी महापुरुप हुए हैं उनका वाह्य व्यक्तित्व भी प्राय आकर्षक एव प्रभावशाली रहा

---

६. उपासक दशा १।७६

७. औपपातिक सूत्र ३७ (सुत्तागमे) द्वितीय खण्ड, पृ० २४

है। जैन परम्परा मे तिरसठ शलाका पुरुष (महापुरुष) हुए हैं, उन सबका शारीरिक सगठन, सस्थान, आकार अत्युत्तम होता है।[८] उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्ण रेखा जैसी होती है।[९] औपपातिक सूत्र मे विस्तार के साथ भगवान महावीर के वाहरी व्यक्तित्व का वर्णन किया गया है, वहाँ वताया है कि उनकी आँखें पद्मकमल के समान विकसित, ललाट अर्ध चन्द्र के समान दीप्तियुक्त थे। वृपभ के समान मासल स्कन्ध थे। भुजाएँ लम्वी थी। पूरा शरीर सुगठित एव सुन्दर आकार वाला था—प्रज्वलित निर्धूम अग्नि की शिखा के समान तेजस्वी था। जिसे देखते ही मन मुग्ध हो जाता, आँखें वार-वार देखने को लालायित होती और दर्शन के साथ ही मन मे प्रियता एव भव्यता का भाव जाग पडता।[१०] इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र के वीसवें अध्ययन मे मगध सम्राट श्रेणिक अनाथी मुनि के प्रथम दर्शन (समागम) से प्रभावित हुआ था। अनाथी मुनि नानाकुसुमो से आच्छादित मण्डीकुक्षी उद्यान के घने वृक्षो की शीतल छाया मे साधनारत वैठे थे। उनकी आकृति सुकोमल एव भव्य थी। तारुण्य के ओज के साथ मुख मण्डल से असीम शान्ति टपक रही थी। वन क्रीडा के लिए आये हुए मगधराज श्रेणिक ने ज्यो ही उन्हे देखा, तो मुख से यह स्वर लहरी-फूट पडी—"कैसा वर्ण! कैसा रूप! इस आर्य की कैसी सौम्यता! कैसी इसकी क्षमा! कैसा इसका त्याग! कैसी इनकी भोग निस्पृहता।"[११] जैन सूत्रो मे आचार्य की आठ सम्पदा वतलाई गई हैं उसमे (शरीर सम्पदा) रूपसम्पदा[१२] भी एक प्रमुख सम्पदा मानी गई है। रूपवान होना आचार्य का एक अतिशय है। महाकवि अश्वघोष ने वुद्ध के शारीरिक सुगठन, सौन्दर्य एव प्रभविष्णुता का वर्णन करते हुए लिखा है—उस तेजस्वी मनोहर

---

८. (क) प्रज्ञापना सूत्र २३,
(ख) त्रिषष्टि शलाका०

९. हारिभाद्रीयावश्यक, प्रथम भाग गा. ३६२-६३

१०. अवदालिय पुडरीयणयणे चन्दद्धसमणिडाले-वरमहिस-वराह-सीह सद्दल उसभ नागवरपडिपुण्ण विउल क्खधे ·· औपपातिक सूत्र १

११. अहोवण्णो अहो रूव, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खन्ती अहो मुत्ती, अहो भोगे असंगया॥
—उत्तराध्ययन सूत्र, अ० २०, गा. ६

१२ दशाश्रुतस्कन्ध ४. स्थानाग ८.

रूप को जिसने देखा उसकी आँखें उसी मे बँध गई।[13] उसे देखकर राजगृह की लक्ष्मी भी सक्षुव्व हो गई।[14] जैन कर्म सिद्धान्त मे शुभनाम कर्म की बयालीस प्रकृतियाँ बताई गई हैं। वहाँ बताया है—"शारीरिक तेज, सुन्दरता, उपयुक्त गठन, परिपूर्ण अगोपाग ये सब पुण्य के उदय से ही प्राप्त होती हैं।[15] जैन दर्शन, दर्शन की दृष्टि से भले ही बाहरी रूपरग को महत्व न देता हो, किन्तु उसकी प्रभाविकता एव भव्यता से तो इन्कार नही करता, वह सुन्दरता को एक पुण्योपलब्धि मानता है और यह—भी मानता है कि हर महापुरुष शारीरिक सुन्दरता से परिपूर्ण होते हैं। उनके बाहरी रूप दर्शन मे भी किसी प्रकार की कमी नही होती। यही सिद्धान्त हमे गणधर गौतम के बाहरी व्यक्तित्व मे दिखलाई पडता है।

शरीर की ऊँचाई और संहनन

●

शरीर की लम्बाई जितनी भगवान महावीर की थी उतनी ही गणधर गौतम की थी। उनके लिए भगवती मे—'**सत्तुस्सेहे**" शब्द आया है जिस पर टीकाकार ने लिखा है—"**सप्तहस्तोच्छ्रयः**" सात हाथ ऊँचा उनका कद था और वह '**समचउरंससठाण सठिए**' समचतुरस्र सस्थान से सस्थित था। यह बताया जा चुका है कि जितने भी तीर्थंकर, चक्रवर्ती वासुदेव बलदेव आदि शलाका पुरुष होते हैं उनका संस्थान यही होता है। समचतुरस्र—का शाब्दिक अर्थ है पुरुष जब सुखासन (पालथी लगाकर) से बैठता है तो उसके दोनों घुटनो का और दोनो बाहुमूल—स्कन्धो का अन्तर (दाया घुटना, बाया स्कन्ध, बाया घुटना दाया स्कन्ध) इन चारो का बराबर अन्तर रहे वह समचतुरस्र संस्थान कहलाता है। आचार्य अभयदेव ने बताया है—'जो आकार सामुद्रिक आदि लक्षण शास्त्रो के अनुसार सर्वथा योग्य हो वह समचतुरस्र कहलाता है।[16] इन्द्रभूति का देहमान, ऊपर नीचे का भाग समान था और वह दीखने मे सुन्दर

---

१३. यदेव यस्तस्य ददर्श तत्र तदेव तस्याथ ववन्ध चक्षु — बुद्ध चरित १०।८

१४. ज्वलच्छरीर शुभ जालहस्तम्
सचुक्षुभे राजगृहस्य लक्ष्मी — बुद्ध० १०।९

१५. (क) ज्ञापना २३.
(ख) कर्मग्रन्थ

१६. शरीर लक्षणोक्तप्रमाणाऽविसवादिन्यश्चतस्रो यस्य तत् समचतुरस्रम्।
—भगवती (टीका) १।१

प्रतीत होता था। इन्द्रभूति के शरीर का आन्तरिक गठन वहुत ही सुदृढ एवं परस्पर सम्वद्ध था। शरीर के भीतरी 'अस्थि सघटन'[१७] के लिए जैन कर्म सिद्धान्त मे 'संहनन' शब्द का प्रयोग हुआ है। छह प्रकार के 'संहनन' वताये गये हैं जिनमे सर्वश्रेष्ठ सहनन है—वज्रऋषभनाराच सहनन।[१८] इन्द्रभूति का संहनन भी 'वज्रऋषभ नाराच' था। इसका सामान्य अर्थ यह समझना चाहिए कि इन्द्रभूति का शारीरिक वल, भार उठाने की क्षमता, हड्डियो की सघटना सौष्ठव आदि भी उत्तम थी। शारीरिक गठन की सुन्दरता के साथ ही उनके मुख, नयन, ललाट आदि पर अद्भुत ओज एव चमक थी। जिस प्रकार कसोटी पत्थर पर सोने की रेखा खीच देने से वह उस पर चमकती रहती है, उसी प्रकार की सुनहली आभा गौतम के मुख पर सतत दमकती रहती थी। उनका वर्ण गौर था, कमल की केसर की भाँति उसमे गुलावी मोहकता भी थी। पचास वर्ष की अवस्था होने पर भी उनके मुख व आँखो पर किसी प्रकार की विवर्णता नही आई थी वल्कि तप साधना करने से उनके तेज मे और अधिक निखार आने लगा। जव उनके ललाट पर सूर्य की किरणें गिरती तो ऐसा लगता होगा कि कोई सीसा या पारदर्शी पत्थर चमक रहा है। जव गौतम चलते तो उनकी दृष्टि इधर उधर से हटकर सामने के मार्ग पर टिक जाती और स्थिर दृष्टि से भूमि को देखते हुए चलते। उनकी गति वडी शान्त, चचलता रहित, एवं असंभ्रान्त थी[१९] जिसे देखकर सहज ही मे दर्शक उनकी स्थितप्रज्ञता का अनुमान लगा सकता था।

उनका व्यवहार वडा मधुर एवं विनयपूर्ण था। वे जव किसी कार्य वश वाहर जाते तो भगवान महावीर की आज्ञा लेते, आते तो पुन उनके पास जाकर अपनी कार्य सम्पन्नता की सूचना देकर फिर किसी कार्य मे लगते।[२०] बडे-वडे तपस्वी साधको के लिए भी साधना, विनय एव व्यवहार मे गौतम स्वामी का उदाहरण

---

१७. सघयणमट्ठिनिचओ—कर्मग्रन्थ भा० १ गा० ३७

१८. (क) प्रज्ञापना सूत्र पद २३. सू० २९३। (ख) स्थानाग ६।३ (ग) कर्मग्रन्थ भा० १ गा० ३८

१९. अतुरियमचवलमसंभतं जुगतरपरिलोयणाए दिट्ठिए पुरओ इरियं सोहेमाणे।
—उपासक दशा १। सूत्र ७८

२०. उपासकदशा १। सूत्र ७७

दिया जाता था।[२१] अतकृद् दशा सूत्र[२२] मे राजकुमार अतिमुक्तक के साथ इन्द्रभूति गौतम का जो वार्तालाप एव व्यवहार प्रदर्शित किया गया है उससे पता चलता है कि इतना वडा तत्त्वज्ञानी साधक छोटे अबोध वच्चो के साथ भी कितनी मधुरता एव आत्मीय भावना के साथ व्यवहार करता है। राजाओ के अन्त.पुर मे वे भिक्षा के लिए जाते हैं, तो वहाँ उनकी रानियो एवं दास-दासियो के साथ भी उनका व्यवहार-वर्तन वहुत ही विवेक पूर्ण एव स्नेहसिक्त होता है।[२३] इन्द्रभूति गौतम के प्रभावशाली आकर्षक व्यक्तित्त्व के ये जो कुछ रूप आगमो के अनुशीलन से प्राप्त होते हैं उनसे ज्ञात होता है कि गौतम का आन्तरिक व्यक्तित्त्व जितना गम्भीर, प्रौढ एव विराट् था वाह्य व्यक्तित्व भी उतना ही मधुर एव चुम्वकीय था। शारीरिक सौष्ठव, लालित्य एव व्यवहार कुशलता के कारण गौतम के प्रथम दर्शन मे ही सम्पर्क मे आने वाला उनके अति निकट का आत्मीय वन जाता और श्रद्धा से पूर्ण हृदय को खोलकर उनके चरणो मे रख देता।

तपः साधना

●

आकर्षक व्यक्तित्व के धनी इन्द्रभूति गौतम के अतरग व्यक्तित्व की गहराई मे उतरने से पूर्व उनके तप पूत जीवन की एक सामान्य झाकी भी प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। भगवती, उपासगदशा तथा औपपातिक सूत्र आदि मे गौतम के वाह्य दर्शन के आगे जो उनके आन्तरिक तपस्वी जीवन की स्वर्णिम रेखाये खीची गई हैं वे वहुत ही अर्थपूर्ण एवं विशिष्ट तप साधना की द्योतक है। उनके लिए प्रयुक्त विशेपणो पर[२४] विचार करने से लगता है कि भगवान महावीर के शासन मे

---

२१. जहा गोयम सामी—अनुत्तरोपपातिक (धन्य अणगार वर्णन) देखिए—का चित्रण

२२. अतकृद्दशा वर्ग

२३. विपाकसूत्र १। मृगादेवी के साथ वार्तालाप का चित्रण

२४. उग्गतवे, दित्ततवे, घोरतवे, महातवे, उराले, घोर गुणे, घोर तवस्सी, घोर वभचेरवासी उच्छूढसरीरे, सखित्तविउल तेउलेस्से, छट्ठ-छट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण सजमेणं तवसा अप्पाण भावे माणे विहरई। —उपासग दशा १।७६

सर्वोत्कृष्ट तप साधना करने वाले धन्य अणगार[25] से गौतम की साधना किसी प्रकार कम नही थी। वे बहुत बड़े साधक एव तपस्वी थे जिन पर भगवान महावीर के विशाल श्रमणसघ को गौरव था और उन्हे आदर्श माना जाता था। गौतम ने जीवन के प्रारम्भ मे ज्ञान एव श्रुत की आराधना की और उसके चरम शिखर तक पहुँचे। छद्मस्थ साधक के ज्ञान की अन्तिम रेखा का स्पर्श करने वाले गौतम जो पहले चतुर्दश विद्याओ के पारगामी थे, भगवान महावीर के शिष्य बनकर चतुर्दश पूर्व के पारगत बने और पश्चात् अपने जीवन को तप. साधना मे सलग्न कर निरंतर तप: ज्योति प्रज्वलित करते रहे। वे दो दिन उपवास करते, एक दिन भोजन, भोजन मे भी सिर्फ एक समय दिन के तीसरे पहर में स्वय भिक्षा पात्र लेकर सामान्य कुलों मे एक सावारण भिक्षुक की तरह घूमते, और रूखा-सूखा जो भी प्रासुक आहार प्राप्त हो जाता उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते, फिर भगवान महावीर के निकट आकर अपनी भिक्षा उन्हे बतलाते, पारणे की आज्ञा लेकर अपने अन्य साधर्मि जो कि सभी गौतम से लघु थे उन्हे भोजन के लिए प्रेम पूर्वक निमन्त्रित करते—साहू हुज्जामि तारिओ![26] अच्छा हो, आप लोग मेरे भोजन को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करे" अपने छोटे साधुओ और शिष्यो के साथ इस प्रकार का विनय एवं प्रेम भरा व्यवहार गौतम का ही नही, धीरे धीरे सम्पूर्ण श्रमण सघ का आदर्श बन गया था। गौतम उस यथाप्राप्त भोजन से देह का उसी प्रकार पोषण करते थे जिस प्रकार कोई किराये के घर मे रहने वाला अपनत्व से रहित भाव के साथ उसका किराया देता हो। गौतम की इस अनासक्ति के लिए आगमो मे विलमिव पन्नगभूए की उपमा आती है, साप जैसे बिल मे चुपचाप प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार गौतम अनासक्ति पूर्वक भोजन को गले उतार लेते और पुन. अपने स्वाध्याय मे लीन हो जाते।

---

२५. राजगृह मे श्रेणिक द्वारा सर्वश्रेष्ठ तपस्वी साधक के विषय मे पूछने पर भगवान महावीर कहते हैं—

इमेंसि चोद्दसण्ह समणसाहस्सीण धण्णे अणगारे
महादुक्करकारए चेव महानिज्जर तराए चेव।

—अनुत्तरो० ३।३९

इन्ही धन्य अणगार की तपश्चर्या, एवं साधना विधि का वर्णन करते समय कहा गया है— ' पढमाए पोरिसीए सज्झाय करेइ, जहा गोयम सामी '
अनुत्तरो० ३।१९

२६. दशवैकालिक ५।

स्वावलंबी श्रमण

●

उपर्युक्त विवरण से गौतम की अन्य विशिष्टताओ के साथ उनके स्वावलबन की एक स्पष्ट तस्वीर हमारे सामने खिच आती है। जो गौतम अपने पूर्व जीवन मे भारतखण्ड के मूर्धन्यविद्वान माने जाते थे, पाँच-सौ शिष्य प्रतिक्षण उनके चरणो मे करबद्ध खडे रहते, हजारो जिज्ञासु जिनके पास प्रश्नोत्तर के लिए आते और शका समाधान कर प्रसन्न होकर लौटते, वे इन्द्रभूति गौतम जब भगवान महावीर के शिष्य बने, समस्त श्रमणसंघ मे प्रथम स्थान पर आए, पाच-सौ उनके स्वय के शिष्य एव अन्य सभी चवदह हजार श्रमण उन्हे अपना वदनीय, अर्हणीय एव आदर्श समझते थे। वे गौतम भी जब आहार की आवश्यकता होती है तो स्वय अपने हाथ से अपने भाजन (पात्र) एव वस्त्र आदि की प्रतिलेखना करते हैं—**भायण वत्थाइ पडिलेहेइ**[२७]—और स्वय ही भगवान महावीर की आज्ञा लेकर घर-घर मे भिक्षाटन करते हैं।[२८] गौतम का यहस्वावलबन वस्तुत उनके लिए कोई महत्वपूर्ण न रहा हो, किन्तु श्रमणसघ के लिए एक दिशा दर्शक था 'अपना कार्य स्वय करो' इस भावना का प्रवल समर्थक था। और स्वावलवन मे श्रमण शब्द की कृतार्थता का द्योतक था।

दिनचर्या

●

गौतम की चर्याविधि का वर्णन करते हुए आगमो मे बताया है—गौतम स्वामी प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करते थे, द्वितीय प्रहर मे ध्यान करते थे और दिन के तृतीय प्रहर अर्थात् मध्यान्होत्तर मे भिक्षा के लिए स्वय भ्रमण करते थे। भिक्षा भोजन आदि कार्य के लिए एक प्रहर समय से अधिक नही लगाते। चौथे प्रहर मे फिर स्वाध्याय मे लग जाते। रात्रि मे पुन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, द्वितीय पहर मे ध्यान तृतीय मे नीद और चौथे प्रहर मे पुन स्वाध्याय।[२९] उस युग मे सामान्यत जैन श्रमण की

---

२७. उवासग दशा १।७७

२८. उच्चनीय-मज्झिम कुलाइ घर समुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ
उवासग दशा १।७८

२९. उत्तराध्ययन २५।१२।१८

यही समाचारी थी ऐसा उत्तराध्ययन आदि आगमो से प्रतीत होता है। एक प्रहर की नीद सामान्य व्यक्ति के लिये अपर्याप्त है, किन्तु उस समय जिस प्रकार के शरीर सगठन, वल, क्षमता आदि के वर्णन मिलते हैं उसमे उनके स्वास्थ्य की सहन-क्षमता भी सुदृढ होनी चाहिए और उसी दृष्टि से हो सकता है यह सभी सामान्य श्रमणो की चर्या विधि रही हो। किन्तु धीरे धीरे और वहुत ही अल्प समय मे जव परिस्थितियाँ वदली, शारीरिक क्षमताओ मे अन्तर आया तो जैन श्रमण ऐसे भी नही थे कि लकीर के फकीर वने रहे। आचार्य शय्यंभव द्वारा सकलित दशवैकालिक मे भिक्षा का समय वदलने के सम्वन्ध मे स्पष्ट निर्देश है कि—"भिक्षु! गृहस्थ के घर पर भिक्षा का उपयुक्त समय देखकर ही जाये, यदि अकाल—असमय मे उसके घर पर जाएगा तो भिक्षा भी प्राप्त न होगी जिससे स्वय उसे भी क्लेश होगा और गृहस्थ को भी लज्जा का अनुभव होगा।[30] वृहत्कल्प सूत्र मे भी प्रथम एव चरम प्रहर की भिक्षाचरी का समर्थन किया गया।[31] और नियुक्ति काल मे आने तक तो दो एव तीन वार की भिक्षा विधि भी मान्य हो चुकी थी।[32] इसी प्रकार निद्राविधि भी एक प्रहर के स्थान पर विचके दो प्रहर की मान ली गई।[33] समयानुसार आचार विधि मे परिवर्तन करना जैन श्रमणो एव आचार्यो की समयज्ञता का सूचक है, इसे दुर्वलता नही माना जा सकता। चूँकि जैन धर्म अनेकातवादी है, उत्सर्ग-अपवाद मार्ग मे विश्वास करता है। वहाँ कहा गया है—खेत्तं काल च विन्नाय तहप्पाणं निउंजए[34] क्षेत्र, समय एवं क्षमता आदि को देखकर शक्ति का नियोजन करना चाहिए। "जिन शासन मे किसी विधि का एकात निषेध भी नही है और न एकात विधान ही हैं। परिस्थिति को देखकर ही निषेध या विधान किया जाता है जैसा कि रोग मे चिकित्सा के लिए।"[35] अस्तु, गौतम स्वामी

---

३०. अकाले चरसि भिक्खू, कालं न पडिलेहसि ?
अप्पाण च किलामेसि, सन्निवेस च गरिहसि।
—दशवै ५।२।५

३१. वृहद्कल्प ५।६
३२. ओघनियुक्ति भाष्य गा १४९
३३. ओघनियुक्ति गा ६६०
३४ दशवैकालिक ५१
३५. एगतेण निसेहो जोगेसु न देसिओ विहीवाऽवि।
दलिय पप्प निसेहो होज्ज विही वा जहा रोगे।
—ओघनियुक्ति ५५

की कठोर चर्या वर्तमान मे यदि जैन श्रमणो के लिये दुष्कर एवं दुष्पाल्य है तो उसके लिए श्रमणो की दुर्बलता का पक्ष नही देखकर उनकी समयज्ञता एव विधि-निषेध मार्ग व्यवस्था को देखना चाहिये। आज भी 'गौतम स्वामी की करणी' एक उच्चतम क्रिया-पात्रता का सूचक है। साथ मे यह भी ध्वनित होता है कि एक महान तत्वज्ञानी मात्र ज्ञान के सागर के और छोर को नापने मे ही 'अल' नही रहा, किन्तु आचार क्रिया का भी उच्चतम उदाहरण बन कर हजारो वर्ष के बाद आज भी जगमगा रहा है। उन्होंने जीवन भर बेले-बेले तक पारणा किया और पारणे मे भी केवल एक समय भोजन। गौतम की लम्बी तपश्चर्या का वर्णन सूत्रो मे नही मिलता है, किन्तु बेले-बेले के तप की दीर्घकालीन साधना और उसकी महिमा को देखते हुए लगता है यह किसी कठोर दीर्घ तपस्या से कम उग्र नही थी। इसीलिए आगमो मे गौतम को **'उग्गतवे घोरतवे'** आदि विभूषणो से अलकृत किया गया है। भगवती सूत्र के टीकाकार अभयदेव सूरि ने उक्त शब्दो पर टीका करते हुए लिखा है—जिस तपश्चरण की आराधना सामान्य जन के लिए अत्यत कठोर हो, यहाँ तक कि वे उसकी कल्पना भी नही कर सकते ऐसे तपश्चरण को उग्रतप कहा जाता है।[३६]

गौतम की तपश्चर्या के साथ शाति एव सहिष्णुता का मणिकाचन सयोग था। इस शाति के कारण ही तप ज्योति से उनका मुख मडल सतत प्रभास्वर रहता था। तपस् की दीप्ति उनके शरीर पर छिटकती रहती इसीकारण उनके लिए **'दित्त तवे'** विशेषण भी उपयुक्त है। 'दित्त तवे' का अर्थ यह भी किया जाता है—तप के द्वारा उन्होंने अपने कर्म वन को भस्म कर डाला था। और इसी बात को विशेष बलपूर्वक बताने के लिए 'तत्ततवे' महातवे' आदि विशेषण आये हैं। उन्होने तप से अपने अन्तर मल को तपा डाला था। जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि मे तप कर निखर जाता है, और समस्त मलिनता दूर हो जाती है, उसी प्रकार गौतम ने तप कर आत्मज्योति को निखारा था। उस तप मे किसी प्रकार की कामना, आशसा, परलोक की वितृष्णा एव यश कीर्ति की अभिलाषा नही थी।[३७] वे केवल आत्म शोधन के लिए तप करते रहे। कर्म निर्जरा ही उनके तपश्चरण का एक एव अंतिम ध्येय था 'नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए

---

३६ यदन्येन प्राकृतपु सा न शक्यते चिन्तयितुमपि तद्विधेन तपसा युक्त ।
—भगवती वृत्ति १।१ पृ० ३५

३७ 'महातवे'—त्ति आशसा दोष रहितत्वात् प्रशस्ततपा ।
—भगवती वृत्ति १।१ पृ० ३५

तव महिट्ठिज्जा'[३८] भगवान महावीर का यह सदेश ही उनकी समस्त तप साधना का मूल था। दूसरे कोई गौतम के कठोर तपश्चरण की चर्चा करते तो वे रोमाचित हो जाते, इसलिए उनके तप को 'घोरतप' कहा गया है।

ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी

●

घोर तपस्वी के साथ-साथ गौतम के लिए 'घोरबभचेरवासी' भी एक विशेषण आता है। और यह विशेषण किसी न किसी विशिष्टता का द्योतक भी हो सकता है। साधारणत 'घोर' शब्द 'रुद्र' अर्थ मे प्रयुक्त होता है।[३९] किन्तु जब उसके साथ घोर तप, घोर गुण, घोर ब्रह्मचर्य आदि विशेषण लग जाते है तो अर्थ मे प्रसगानुसार अन्तर भी आ जाता है। उत्तराध्ययन ९ मे शकेन्द्र जब नमिराजर्षि को गृहस्थाश्रम मे रहने की बात कहता है तो वहाँ 'घोरासम' घोर-आश्रम' शब्द का प्रयोग गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता का द्योतक भी बन गया है। सामान्यत ब्रह्मचर्य को अन्य व्रतो से कठोर माना गया है। साधारण मनुष्य उसकी आराधना कर सकने मे समर्थ नही हो पाते[४०] इस आशय से ब्रह्मचर्य के साथ 'घोर ब्रह्मचर्य, शब्द का प्रयोग भी आगमो मे कई स्थानो पर हुआ है।[४१] गौतम के प्रकरण मे भी 'घोर' शब्द व्रत की कठोरता, दुष्पाल्यता के साथ विशिष्टता का भी द्योतक हो सकता है और इस दृष्टि से सामान्य ब्रह्मव्रतधारी से गौतम के ब्रह्मचर्य की साधना की दृष्टि से कुछ विशिष्टता हो सकती है और वह यही कि ब्रह्म साधना का अतिम स्तर जो ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी के रूप मे होता है, सभवत उसी स्तर पर गौतम की साधना पहुँची होगी, और उसी बात की ओर यह विशेषण एक सकेत के रूप मे हो।

---

३८. दशवैकालिक ९

३९. अभिधानराजेन्द्र भा० २ पृ० १०४५

४० घोर च तद् ब्रह्मचर्यं चाल्पसत्त्वैर्दु खेन यदनुचर्यते।
तस्मिन् घोर ब्रह्मचर्ये वस्तु शीलमस्येति घोरब्रह्मचर्यवासी।
—भगवती वृत्ति १।१

४१ देखिए—ज्ञातासूत्र १।१ जबूद्वीप प्र० रायपसेणी, औपपातिक, निरयावलिया आदि।

विदेहभाव

•

गौतम के लिए एक विशेषण यह भी प्रयुक्त हुआ है—"**उच्छूढ सरीरे**" शरीर का त्याग करने वाले। वस्तुत गौतम शरीरधारी थे तव शरीर का त्याग करने की वात सीवेरूप मे कैसे सगत वैठ सकती है? इसका आशय है शरीर होते हुए भी शरीर के सस्कार, ममत्व एव किसी प्रकार की आसक्ति उनमे नही थी। यह विशेषण गौतम की उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति का द्योतक है। वे अध्यात्म के उस स्तर पर पहुँच गये थे जहाँ शरीर रहते हुए भी शरीर की भावना या शरीर का सस्कार नही रहता है। शरीर के सुख-दु ख, भूख प्यास की कोई स्थिति उन्हें अपनी साधना से विचलित नही कर सकती थी। भगवान महावीर का यह सदेश "**एगमप्पाणं सपेहाए धुणे कम्म सरीरगं**'[४२] आत्मा को शरीर से पृथक समझकर कर्म शरीर को धुन डालो, गौतम के जीवन मे रम गया था और वे सतत देह मुक्त भाव मे विचरण करते हुए चिन्मय विशुद्ध स्वरूप आत्मा का चितन करते रहते थे।" मैं केवल शक्ति-ज्योति स्वरूप हूँ।[४३] ज्ञान दर्शनमय ज्योति ही मेरी आत्मा का शाश्वत रूप है। वही शुद्ध शाश्वत तत्व मैं हूं। ये परमाणु—शरीर के सुख-दु ख, वेदना सस्कार और पोडा मेरा अहित नही कर सकते।''[४४] अध्यात्मयोग की यह उच्चतम भावना गौतम के जीवन मे साकार हुई यह उक्त विशेषण से स्पष्ट प्रतीत होता है। उनकी दृष्टि आत्म-केन्द्रित हो गई थी, और शारीरिक सस्कार से मुक्त थी। श्रीमद् राजचन्द्र ने इसी स्थिति को देहातीत स्थिति वतलाते हुए ऐसे परम योगी को नमस्कार किया है—

> देह छता जेहनी दशा वर्ते देहातीत।
> ते योगी ना चरण मा वदन छे अगणीत ॥[४५]

---

४२. आचाराग १। ४। ३

४३. केवलसत्ति सहावो सोह—नियमसार ९६

४४. (क) एगो मे सासदोअप्पाणाणदसणलक्खणो-नियम०१०२-महाप्रत्याख्यान १०१

(ख) अहमिक्को खलु सुद्धो दसण णाण मइयो सदाऽरुवी,
णवि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्ण परमाणुमित्तपि। —समयसार ३८

४५. आत्मसिद्धि—श्रीमद् राजचन्द्र,

तपोपलब्धि

●

अध्यात्म की इस चरमस्थिति पर पहुँचे हुए साधक के लिए यह सहज ही था कि तपोजन्य लब्धियाँ एव सिद्धियाँ उनके चरणो मे लौटने लगे। जैन ग्रन्थो मे अनेक प्रकार की तपोजन्य लब्धियो का वर्णन आता है। विशिष्ट प्रकार के तपश्चरण एव उत्कृष्ट शुभ अध्यवसाय के कारण आत्मा मे अमुक प्रकार की शक्ति जागृत हो जाती है, जिसे लब्धि कहा जाता है।[४६] उन लब्धियो मे एक तेजोलब्धि भी है। इस लब्धि के कारण साधक किसी क्रोध आदि प्रसग पर अपने अन्तर से एक प्रकार की अग्नि को निकालता है, जो कई योजन तक चली जाती है और उस क्षेत्र मे रही हुई समस्त वस्तु, विशाल भवन, वृक्ष, नगर आदि को जला कर भस्मसात् कर डालती है। गोशालक के पास इस प्रकार की तेजोलब्धि थी, जिसका प्रयोग उसने भगवान महावीर पर भी किया था।[४७] गौतमस्वामी को विशिष्ट तपश्चरण के कारण जो लब्धियाँ प्राप्त हुई उनमे तेजोलब्धि (तेजोलेश्या) भी थी, और उसकी शक्ति वहुत ही तीक्ष्ण थी। एक साथ सोलह महादेशो को भस्म करने मे समर्थ। किन्तु उनकी दृष्टि तो आत्मकेन्द्रित थी, शाति एव वैराग्य मे लीन थी, ससार के प्रत्येक प्राणी को मित्र भाव से देखते थे। अत उन्होने इस प्रकार की विपुल तेजोलब्धि को अपने शरीर के भीतर ही सगुप्त करके रखी थी। आत्मा पर कठोर समय की वृत्ति इस विशेपण से ध्वनित होती है, और साथ ही उनकी तपोजन्य विशिष्ट उपलब्धि का दिगदर्शन भी! समता एव प्रेम की वृष्टि करने वाले साधक के लिए इस प्रकार की लब्धि का प्रयोग कभी क्यो आवश्यक होता? वह तो ससार को आग वुझाने आया था, आग लगाने नही, वह घर-घर मे और घट-घट मे महावीर का विश्ववधुत्व, समता एवं करुणा का सदेश पहुँचाने वाला महान् साधक था, इस प्रकार की लब्धियो का सगोपन करके आत्म शक्ति का विश्व-कल्याण मे नियोजन करना ही उनका ध्येय था।

---

४६. परिणाम तव वसेणं एमाइ हु ति लद्धीओ।

—प्रवचन सारोद्वार, द्वार २७० गा, १४९२-१५०८

४७. भगवती सूत्र १५।

गौतम की ज्ञान सम्पदा

जैन दर्शन की मूल आत्मा है—'**पढम नाण तओ दया**'[४८] पहले ज्ञान फिर क्रिया। जब तक अन्त करण मे ज्ञानज्योति प्रज्वलित नही होती, आत्म बोध की प्राप्ति नही होती, तब तक समस्त क्रिया काड, 'देह दड' से अधिक महत्वपूर्ण नही है। उस 'देहदड' को जैनाचार्यों ने 'बाल तप' कहा है और वह कितना ही उग्र हो, उससे मुक्ति प्राप्त नही हो सकती—"**नहु बालतवेण मुक्खुति**"[४९] इसलिए क्रिया से पूर्व ज्ञान, आत्मबोध प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। वैसे एकात ज्ञान एव एकात क्रिया दोनो ही अपने मे अधूरे हैं। [५०] किन्तु क्रम की दृष्टि से पहले ज्ञान और फिर क्रिया, यही आत्म साधना की सही दृष्टि है। [५१] ज्ञान को प्रकाश माना गया है, [५२] वह प्रकाश प्राप्त करके साधक अपने साधना मार्ग पर अस्खलित एव अप्रतिहत गति से बढता चला जाता है। जैन दर्शन का यह मूल स्वर गौतम के जीवन मे मुखरित हुआ है। उन्होने पहले ज्ञान की आराधना की, इससे आत्मस्वरूप का बोध प्राप्त किया और फिर उग्र तपश्चरण मे शरीर को झौक डाला। वे अपने पूर्व जीवन मे वैदिक परपरा के प्रकाड पडित थे, उसके अग-अग को टटोला, अनुशीलन किया और उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्यो का अवबोध प्राप्त किया। आचार्य हेमचन्द्र के कथनानुसार वे चतुर्दश विद्याओ मे पारगत थे। [५३] 'चौदह विद्या' मे उस युग की समस्त विद्याओ का समावेश कर दिया गया था। चार वेद, छह वेदाग,[५४] धर्म शास्त्र, पुराण,

---

४८. दशवैकालिक ४

४९. आचा० नि० २।४

५०. णाण किरिया रहिय किरियामेत्त च दोवि एगंता।

—सन्मति तर्क० ३।६८

५१. नाणी सजम सहिओ नायव्वो भावओ समणो

—उत्त० नि० ३८९

५२. नाण पयासग। आव० नि० १०३

५३. त्रिपष्टि शलाका १०। ५

५४. छह वेदाग ये हैं—

(क) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

—वैदिक कोश, पृ० ४९४ (प्रकाशक बनारस हिन्दू युनिर्वसिटी)

(ख) सिक्खा-कप्पे-वागरणे-छदे-निरुत्ते-जोइसामयणे। —भगवती, २।१

मीमासा एव तर्क (न्याय शास्त्र) ये चौदह विद्या कहलाती थी।[५५] भगवान महावीर के पास प्रव्रजित होने पर उन्होने गौतम को त्रिपदी का ज्ञान दिया, जिसके आधार पर उन्होंने अपनी विस्तार-बुद्धि के द्वारा विशिष्ट क्षयोपशम के कारण चतुर्दश पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। चौदह विद्याओ मे जिस प्रकार वैदिक परम्परा का समस्त वाङ्मय समाहित हो जाता है, उसी प्रकार चौदह पूर्व मे जैन दर्शन का समस्त ज्ञान विज्ञान अन्तर्हित हो जाता है।[५६] माना तो यह भी जाता है कि इन चौदह पूर्वों मे संसार की समस्त विद्याओ का समावेश हो जाता है। चतुर्दशपूर्व धर के लिए संसार का कोई भी भौतिक या आध्यात्मिक ज्ञान अविज्ञात नही रहता। ऐसा पूर्वों के विषयानुक्रम से स्पष्ट होता है। गौतम को 'चौद्दसपुव्वि' कहा गया है। गौतम न केवल चौदह पूर्व के ज्ञाता थे, वल्कि उनकी रचना भी उन्होने ही की थी, चूंकि चौदह पूर्व वारहवें अग मे समाविष्ट होते हैं, और गणधर द्वादशागी के रचयिता माने गये हैं।[५७] इस प्रकार सपूर्ण श्रुत शास्त्र के ज्ञाता एव रचयिता के रूप मे गौतम की विलक्षण प्रतिभा एव गहन श्रुतविद्या का रूप हमारे समक्ष उजागर हो जाता है।

मानस ज्ञानी

●

गौतम केवल श्रुतज्ञान के ही नही, वल्कि मानसविद्या के भी विज्ञाता थे। वे किसी भी सज्ञीप्राणी के मनोभावो का तत्काल ज्ञान प्राप्त कर सकते

---

५५. षडंगमिश्रिता वेदा धर्म शास्त्र पुराणकम्।
    मीमासा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्दश।
    —आप्टे ज् सस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी भागा, २ पृ० ६९४
    कुछ अन्तर के साथ देखिए   याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १ श्लो० ३
                                    विष्णुपुराण् अश ३, अ० ६, श्लो० २८

५६. चौदह पूर्व के नाम क्रमश. यो हैं—
    (१) उत्पाद पूर्व, (२) अग्रायणीय पूर्व (३) वीर्य प्रवाद पूर्व (४) अस्ति नास्ति प्रवाद (५) ज्ञान प्रवाद (६) सत्य प्रवाद (७) आत्म प्रवाद (८) कर्म प्रवाद (९) प्रत्याख्यान प्रवाद (१०) विद्यानुप्रवाद (११) अवन्ध्य पूर्व (१२) प्राणायु प्रवाद (१३) क्रिया विशाल पूर्व (१४) लोक विन्दुसार।
    —नदीसूत्र ५७

५७. देखिए—आगम युग का जैन दर्शन—(प० दलसुख भाई पृ० ८) समवायाग १४ वा एव १४७,

थे। उनकी इस विशिष्टता को आगम मे-'चउ नाणोवगएत्ति' विशेषण से स्पष्ट किया है। वे मतिज्ञान एव श्रुतज्ञान से समस्त वाङ्मय के ज्ञाता एव उपदेष्टा सिद्ध होते हैं, अवधिज्ञानी होने के कारण विश्व के भौतिक पदार्थों के भूत भविष्य के परिणामो का ज्ञान भी उन्हें था, और फिर मन पर्यव ज्ञान के द्वारा वे ससार के समस्त सज्ञी प्राणियो के मनोभावो, मानसिक उत्थान पतन, परिवर्तन आदि का विशिष्ट ज्ञान भी प्राप्त कर लेते थे।

गौतम की ज्ञान सपदा ससार की सर्वोत्तम एव सर्वोत्कृष्ट सपदा थी। वे ससार के प्रत्येक पदार्थ एव प्रत्येक विद्या के ज्ञाता थे। और इतने वडे ज्ञानी जव आत्म साधना के मार्ग पर वढे तो समस्त दैहिक भावो से मुक्त होकर अध्यात्म के चरम शिखर तक पहुँच गये थे। कठोर तपश्चरण, एकात विशुद्ध ध्यान और उसी के साथ भगवान महावीर की अनन्यतम उपासना यह गौतम के जीवन की विशिष्टता थी।

इस प्रकार गौतम के जीवन की एक रूप छवि जो आगमो से हमे प्राप्त होती है—उस पर चिन्तन करने से लगता है—गौतम अपने युग के महानतम तत्वज्ञानी, विशिष्ट साधक और तपस्वी थे। एक विरल अध्यात्म योगी, सिद्धिसपन्न साधक और विश्वकल्याण की उदग्र भावना से युक्त परिव्राजक ! जिनका वाह्य व्यक्तित्व भी गौरव-पूर्ण था और आन्तरिक व्यक्तित्व तो अन्यतम अक्षय गरिमा से मण्डित, सिद्धि से सपन्न एव अपने युग का अद्वितीय भी कहा जा सकता है।

गौतम के जीवन मे जितनी तपश्चरण की पार्वतीय उत्कटता थी उतनी ही विनय, सरलता, मृदुता की सुकुमार पुष्प सम कोमलता भी। उनका जीवन पुष्प वस्तुत पुष्प नही, किन्तु फूलो का वह गुलदस्ता है, जिसमे विविध रग, विभिन्न सौरभ एव विविध आकार के सुरम्य सुकुमार फूल महक रहे हैं और अपने परिपार्श्व को भी सुरभित करते जा रहे हैं। आगम साहित्य मे गौतम के अनेक जीवन प्रसग फूलो की तरह विखरे हुए हैं जिनमे कही भक्ति एव विनय की सौरभ है, कही सरलता, सत्य-निष्ठा की महक है, तो कही ज्ञानोपासना एवं तत्त्व जिज्ञासा की सुगध है, जो जीवन के विविध पक्षो को सुन्दर एवं सुरम्य रूप मे प्रस्तुत करती हैं। अगले पृष्ठो पर हम गौतम के विविध जीवन प्रसगो को एक माला का रूप देकर प्रस्तुत कर रहे हैं।

विनम्रता की मूर्ति

•

अपार ज्ञानगरिमा एवं दुर्वष तप शक्ति के स्वामी होते हुए भी गौतम का हृदय वहुत ही सरल एव विनम्र था। उन्हे कभी अपने ज्ञान का अहकार नही हुआ, और न कभी अपने पद एव साधना की प्रगल्भता मे वहे। ज्ञान प्राप्ति की उत्कट जिज्ञासा का वर्णन तो अगले पृष्ठो पर पाठक देख सकेगे। यहाँ हम गौतम के जीवन की आदर्श विनम्रता एवं सत्य शोधकवृत्ति की झाकी प्रस्तुत कर रहे है।

भगवान महावीर का प्रथम एव प्रमुख श्रावक था आनन्द। जीवन के अन्तिम समय मे उसने अपनी समस्त सासारिक क्रियाओ का परित्याग करके जीवन मरण की आकाक्षा से रहित होकर उच्च आध्यात्मिक जागरण करते हुए आजीवन अनशन ग्रहण किया था। भगवान महावीर उस समय अपने श्रमण संघ के साथ वाणिज्य ग्राम के दूतिपलाश चैत्य मे ठहरे हुए थे। गणधर गौतम दो दिन का उपवास पूर्ण करके पारणे के लिए नगर मे गये। वहाँ भिक्षाचारी करते हुए जव वे कोल्लाग सन्निवेश के पास से गुजरे तो लोगो मे एक चर्चा सुनी। स्थान स्थान पर एकत्र हुए लोग वात कर रहे थे—"भगवान महावीर का अंतेवासी (श्रावक) आनद पौषवशाला मे जीवन की अतिम आराधना के रूप मे अनशन व्रत लेकर जन्म-मरण की आकाक्षा से मुक्त होकर आध्यात्म जागरण कर रहा है।"

लोगो की चर्चा सुनकर गौतम के मन मे आनद से मिलने की इच्छा हुई। वे कोल्लाग सन्निवेश मे स्थित पौषधशाला मे आये। गौतम गणधर को आता देखकर आनद हर्ष एव उल्लास से गद्‌गद्‌ हो उठा। उसने हाथ जोडकर गौतम को नमस्कार किया और प्रार्थना की—"भन्ते! मैं इस दीर्घ तप के कारण अशक्त हो चुका हूँ, अत उठकर आपका स्वागत सत्कार नही कर सकता, विधिवत् वन्दन नही कर सकता, अत आप कृपा करके आगे आइए ताकि मे सविधि वन्दन नमस्कार कर सकूँ।"

आनन्द के विनयपूर्ण वचन सुनकर गौतम निकट आये। अशक्त होते हुए भी आनन्द ने सिर झुकाकर गौतम के चरणो मे विधि युक्त वदन किया। कुछ औपचारिक वार्तालाप के पश्चात् आनद ने पूछा—"भगवन्! गृहस्थाश्रम मे रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान प्राप्त हो सकता है?"

गौतम ने उत्तर दिया—"हाँ, हो सकता है।"

आनन्द ने कहा—"भगवन् ! मुझे भी घर मे रहते हुए अवधिज्ञान हुआ है। मैं पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा मे लवण समुद्र के पांच सौ योजन तक के क्षेत्र को देखता एव जानता हूँ। उत्तरदिशा मे चुल्ल हिमवत वर्षधर पर्वत तक देखता एवं जानता हूँ। ऊँची दिशा मे सौधर्म देवलोक तक एवं नीची दिशा मे रत्न प्रभा पृथ्वी के लौलुच्य नामक नरकवास तक देखता एव जानता हूँ।"

गौतम ने आनन्द के विशाल अवधि ज्ञान का वर्णन सुना तो आश्चर्य हुआ। वे बोले—"आनन्द ! गृहस्थ को अवधि ज्ञान तो हो सकता है, किन्तु इतनी विस्तृत सीमावाला अवधिज्ञान नही हो सकता। तुम्हारा कथन भ्रांति युक्त हो सकता है, अत सत्य प्रतीत नही होता, तुम्हे अपनी इस भूल के लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए।"

विनय एव विस्मय के साथ आनन्द ने निवेदन किया—"भगवन् ! क्या जिन शासन मे ऐसी भी परिपाटी है कि सत्य तथ्य एव सद्भूत कथन के लिये भी प्रायश्चित्त करना पडता है ?"

गौतम—"आनन्द ! नही !"

आनन्द—"भगवन् ! तो फिर मुझे सत्य कथन के लिये आप प्रायश्चित्त करने को कैसे कह रहे हैं ?"

आनन्द के कथन से गौतम असमजस मे पड गये। उन्हे अपनी बात पर शंका हुई और वे तत्काल लौटकर भगवान महावीर के पास पहुँचे। भगवान को वंदना करके गौतम ने विनयपूर्वक आनन्द के वार्तालाप की चर्चा करते हुए पूछा—"भन्ते ! क्या गृहस्थ को इतनी बडी सीमावाला अवधिज्ञान हो सकता है ? इस प्रसग को लेकर मेरे और आनन्द के बीच मतभेद हो गया है। वह कहता है मुझे ऐसा अवधि-ज्ञान प्राप्त हुआ है, और मैंने कहा—इतना बडा अवधि ज्ञान गृहस्थ को नही हो सकता, तुम्हारा कथन असत्य है, प्रायश्चित करना चाहिए ! किन्तु भगवन् ! वह तो उलटा मुझे ही प्रायश्चित्त लेने की बात कहता है ! इसमे कौन सही है ?"

भगवान महावीर ने गौतम को सबोधित करके कहा—"गौतम ! इस विषय मे आनन्द का कथन सत्य है। तुम्हे अपनी बात का आग्रह नही होना चाहिए,

प्रायश्चित्त तुम्हे करना होगा। तुमने सत्य वक्ता आनन्द की अवहेलना की है, अत तुम लौटकर उसके घर जाओ, और अपनी भूल के लिए क्षमा मांगो।"[५८]

गौतम को अपनी भूल का पता चलते ही वे तत्क्षण आनन्दगाथापति के पास पहुँचे, अपने कथन पर पश्चात्ताप करते हुए क्षमा मागी और आनन्द की बात को भगवान के द्वारा सत्य प्रमाणित करने की स्वीकृति दी।[५९]

इस घटना मे गौतम के व्यक्तित्व का एक महान रूप उजागर हुआ है—विनम्रता! बौद्धिक अनाग्रह एव निरहकार वृत्ति! मनुष्य का स्वभाव है, वह सामान्यत अपनी भूल को भूल रूप मे नही जान पाता, जान लेने पर भी उसे स्वीकार नही करता, यदि मन-ही-मन स्वीकार भी कर ले तो भी किसी के समक्ष जाकर क्षमा माँगना तो उसे मृत्यु से भी अधिक भयानक एव यत्रणादायी लगता है। जिसमे यदि वह किसी ऊँचे पद पर है, और अपने से छोटो के समक्ष भूल स्वीकार करने का प्रसग आता है तो वह उसके लिए असह्य वेदना का रूप ले लेती है। गणधर गौतम को जब आनन्द श्रावक के समक्ष अपनी भूल स्वीकार करने का प्रसग आया तो उन्होंने विना किसी प्रकार का ननुनच किए तत्क्षण प्रसन्नतापूर्वक उस ओर चल पडे। यह उनके मन की कितनी महानता है। इस असीम विनम्रता मे ही वस्तुत उनकी महानता का सूत्र छिपा है। और यह विनम्रता गौतम के आन्तरिक जीवन की सच्ची निर्ग्रन्थता की सूचना देती है। तथागत बुद्ध ने कहा है[६०] "निर्ग्रन्थ वह है जिसके मन मे गाँठ नही होती है और गाँठ उसे नही होती जिसका मान-अहकार क्षीण हो गया है।" इसी घटना से गौतम की सत्य-सधित्सु वृत्ति की एक विराट झलक मिल जाती है, जब उन्हे आनन्द के कथन मे सत्य प्रतीत हुआ तो वे उसकी स्पष्ट स्वीकृति देने को चल पडे, अपने दो दिन के उपवास के पारणे की परवाह किये विना। सत्य की स्वीकृति और सत्य का सम्मान करना गौतम का सहज स्वभाव था ऐसा प्रतीत होता है। भगवान महावीर का यह सदेश—**सच्चमेव समभिजाणाहि**[६१]—उनके अन्तरमन का स्पन्दन बन गया था जो प्रतिश्वास मे धडक रहा था।

---

५८. आणदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि—उवासगदशा १।८६

५९. उंवासगदशा १ सूत्र ७० से ८५

६०. पहीनमानस्स न सन्तिगन्था—संयुत्तनिकाय १।१।२५

६१. आचाराग १।३-३-१११

सरलता का अक्षय स्रोत

●

गणधर गौतम को जीवन मे चरम कोटि का सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। भगवान महावीर के तो वे प्रिय शिष्य थे ही, उनकी अनन्य कृपा उन पर थी, और साथ ही सपूर्ण श्रमण संघ की श्रद्धा, सम्राटो और सेनापतियो का आदर सम्मान भी गौतम को प्राप्त हुआ था। इतनी श्रद्धा सम्मान पाकर भी गौतम कभी अपने को भूले नही थे। उनके मन मे कभी अहकार तो जगा ही नही। उनका व्यवहार इतना मृदु और आत्मीय होता था कि सामान्य से सामान्य जन, अवोध वालक भी उनकी ओर यो आकृष्ट हो जाता जैसे शिशु माता की ओर। उनके जीवन की सरलता एव मृदुता का निदर्शन कराने वाली एक घटना अतकृत् दशा मे उल्लिखित है।[६२]

एक वार भगवान महावीर पोलासपुर नगर मे पधारे। वहाँ पर विजय नामक राजा था। जिसकी श्रीदेवी नाम की महारानी थी। श्रीदेवी का एक अत्यत प्रिय सुकुमार पुत्र था अतिमुक्तक कुमार।

गणधर गौतम पोलासपुर नगर मे भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए उधर पहुँच गए जहाँ पर राजकुमार अतिमुक्तक अपने बाल साथियो के साथ खेल रहा था। बच्चो के खेलने के लिए एक मैदान था जिसे 'इन्द्रस्थान' कहा जाता था। गौतम जव उस इन्द्रस्थान के निकट से गुजरे तो कुमार अतिमुक्तक ने उन्हे देखा। गौतमस्वामी की विशिष्ट श्वेत वेषभूषा, और दिव्य रूप एव मद-मंद गति देखकर कुमार के मन मे उनके प्रति कौतुहल जगा। वह कुछ देर उनकी ओर देखता रहा, फिर निकट आया तो उनकी अद्भुत सौम्यता से निर्भय होकर पूछने लगा—"भदन्त! आप कौन हैं और किस कारण यो घर-घर मे घूम रहे हैं?'

गौतम ने मदस्मित के साथ बालक की ओर देखा, सहज निश्छलता एव गुलावी सुकुमारता उसके मुख पर बिखर रही थी। मधुर स्वर से गौतम ने कहा—"देवानुप्रिय! हम श्रमण निर्ग्रन्थ हैं, भिक्षा प्राप्त करने के लिए इस प्रकार उच्च-नीच-मध्यम कुलो मे भ्रमण कर रहे हैं।"

अतिमुक्तक—"भन्ते! आप मेरे घर से भी भिक्षा लेंगे?"

---

६२. अतकृत् दशा वर्ग ६

गौतम—"हाँ, क्यो नही।"

अतिमुक्तक—"तो फिर चलिए, आप मुझे बडे ही प्रिय लग रहे हैं, मैं अपने घर ले जाकर आपको भिक्षा दूँगा।" यो कहकर अतिमुक्तक ने गौतम की अगुली पकड ली।[६३] जैसे कोई मित्र अपने मित्र की अगुली पकड कर उसे अपने घर ले चलने का आग्रह करता हो, और गौतम भी वालक अतिमुक्तक के साथ-साथ राज-महलो की ओर चल दिये। जव श्रीदेवी ने गौतम स्वामी की अगुली पकडे राजकुमार को महलो की ओर आते देखा तो वह हर्ष से गद्‌गद् हो उठी। इतने वडे महान तपस्वी महाश्रमण! छोटे से वच्चे के साथ अगुली पकडे कितने प्रेम एव सरल भाव के साथ भिक्षा के लिये आ रहे है? रानी का अंग-अग प्रसन्नता से नाच उठा। उसने सामने आकर गौतम को वदना की और अत्यन्त भाव प्रवणता से भिक्षा प्रदान की।

भिक्षा लेकर जव गौतम स्वामी चलने लगे तो कुमार अतिमुक्तक ने पूछा—"भन्ते! अव आप कहाँ जायेंगे? आपका निवास कहाँ हैं?"

श्रीदेवी वालक के भोले-भाले प्रश्नो पर सकुचा रही थी कि यह अवोध वालक गौतम स्वामी से क्या ऊलजलूल पूछ वैठेगा? पर गौतम वडे ही स्नेह एव सरलता के साथ वालक को उत्तर देते हुए वोले—"कुमार! हमारे धर्मगुरु भगवान महावीर स्वामी तुम्हारे नगर के वाहर श्रीवन उद्यान मे पधारे है, हम लोग वही ठहरे हैं।"

गौतम के स्नेहमय व्यवहार से कुमार का मन आकृष्ट हो गया। वह वोला—"भन्ते! मैं भी आपके साथ आपके धर्माचार्य के दर्शन करने को चलूँ?"

गौतम ने स्वीकृति दी, कुमार गौतम के साथ-साथ भगवान महावीर के निकट पहुँचा। भगवान ने राजकुमार को धर्म कथा सुनाई और कुमार को वैराग्य जागृत हुआ। उसने माता पिता की आज्ञा लेकर भगवान का शिष्यत्व स्वीकार किया।

वालक के साथ वालक का-सा व्यवहार करके उसके हृदय को जीतना सरल नही है। विद्वान विद्वान के साथ चर्चा करके उसे प्रभावित कर सकता है, पर अवोध वच्चो के हृदय को समझकर उसे धर्म एव अध्यात्म जैसे नीरस विषय की ओर आकृष्ट

---

६३ अह तुब्भ भिक्खं दवावेमिति भगवं गोयम अग्गलीए गेण्ह।

—अतकृत् दशा ६

करना बहुत ही कठिन है। इसमे विद्वत्ता की नही, किन्तु हृदय की सरलता, स्नेह-सिक्तता एव मधुरता की आवश्यकता होती है। बालक द्वारा अगुली पकडने पर भी गौतम स्वामी ने उसे भिडका नही, उससे छुडाने का प्रयत्न भी नही किया। चूँकि ऐसा करने पर सभव था बालक के कोमल हृदय को ठेस पहुँचे, साधुवेष के प्रति उसके मन मे जो आकर्षण जगा, वह नफरत व भय मे बदल जाये। गौतम की इस प्रकार की सरलता, मधुरता एव स्नेहशीलता के कारण ही न जाने कितने खिलते हुए सुकुमार शैशव और उभरते हुए अल्हड यौवन त्याग, साधना एव अध्यात्म विद्या के मार्ग पर आकर समर्पित हो गये। लगता है गौतम वास्तव मे ही सरलता एवं मधुरता का अक्षय स्रोत था।

मधुर आतिथ्य

गौतम के हृदय की मधुरता का एक ओर उदाहरण भगवती[६४] मे आता है। कृतगला नगरी से कुछ दूर श्रावस्ती मे परिव्राजक[६५] साधुओ का एक विशाल

---

६४. भगवतीसूत्र २।१

६५. (क) परिव्राजक—भिक्षा से आजीविका करने वाला साधु—निरुक्त १।१४ —(वैदिक कोश)

(ख) जैन सूत्र एव उत्तरवर्ती साहित्य मे तापस, परिव्राजक, सन्यासी आदि अनेक प्रकार के साधको का विस्तृत वर्णन आता है। इसके लिए औपपातिक सूत्र सूत्रकृताग निर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति गा. ३१४ बृहत्कल्प भाष्य भा.४ पृ० ११७० निशीथ सूत्र सभाष्य चूर्णि भाग-२ एव भगवती सूत्र ११।६. आवश्यक चूर्णी पृ० २७८। धम्मपद अट्ठकथा २ पृ० २०९ दीघ निकाय अट्ठकथा–१ पृ० २७०। ललित विस्तर पृ० २४८। तथा जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४१२ से ४१६ तक मे देखा जा सकता है।

परिव्राजक श्रमणो का संक्षिप्त परिचय

"गेरुआ वस्त्र धारण करने के कारण इन्हे गेरुअ अथवा गैरिक भी कहा गया है।[१] परिव्राजक-श्रमण ब्राह्मण धर्म के प्रतिष्ठित पण्डित होते थे। वशिष्ट धर्म

---

१. निशीथचूर्णी १३.४४२०।

परिवार रहता था। उनमे गर्दभालि नामक परिव्राजक का शिष्य स्कन्दक परिव्राजक मुख्य था—स्कन्दक कात्यायन गोत्र का था, चार वेद एव अन्य अनेक धर्मशास्त्रो का वह पारगत था। ब्राह्मण एव परिव्राजको के दर्शन का उसने गहन अध्ययन एवं अनुशीलन किया था।

सूत्र मे उल्लेख है कि परिव्राजक को अपना सिर मुण्डित रखना चाहिए। एक वस्त्र अथवा चर्मखण्ड धारण करना चाहिए, गायो द्वारा उखाडी हुई घास से अपने शरीर को आच्छादित करना चाहिये। तथा जमीन पर सोना चाहिए।[२] ये लोग आवसथ (अवसह) मे निवास करते तथा आचारशास्त्र और दर्शन आदि विपयो पर वादविवाद करने के लिए दूर-दूर तक पर्यटन करते।

परिव्राजक श्रमण चार वेद इतिहास (पुराण), निघट्ट पष्ठितन्त्र, गणित, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिप शास्त्र तथा अन्य ब्राह्मण शास्त्रो के विद्वान होते थे। दान धर्म, शौच धर्म और तीर्थ स्नान का वे उपदेश करते थे। उनके मतानुसार जो कुछ भी अपवित्र होता वह जल और मिट्टी के धोने से पवित्र हो जाता है। और इस प्रकार शुद्ध देह (चोक्ष) और निरवध्य व्यवहार से युक्त होकर स्नान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। इन परिव्राजकों को तालाव, नदी, पुष्करिणी, वापी, आदि मे स्नान करने, गाडी, पालकी अश्व, हाथी आदि पर सवार होने, नट मागध आदि का तमाशा देखने, हरित वस्तु आदि को रोदने, स्त्री, भक्त, देश, राज और चोर कथा मे सलग्न होने, तुम्वी, काष्ठ और मिट्टी के पात्रो के सिवाय वहुमूल्य पात्र धारण करने, गेरुए वस्त्र को छोडकर विविध प्रकार के रगीन वस्त्र पहनने, तावे की अगूठी (पवित्तिय) को छोडकर हार, अर्धहार, कुण्डल आदि आभूपणो को धारण करने, कर्णपुर को छोडकर अन्य मालाएँ पहनने और गगा की मिट्टी को छोडकर अगुरु, चन्दन आदि का शरीर पर लेप करने की मनायी है। उन्हे केवल पीने के लिए एक मागध प्रस्थप्रमाण जल ग्रहण करने का विधान है। वह भी वहता हुआ और छन्ने से छना हुआ (परिपूय)। इस जल को वे हाथ, पैर, थाली या चम्मच आदि धोने के उपयोग मे नही ला सकते।"[३]

—जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ११२-११६

---

२. १०-६-११, मलालसेकर, डिक्सनरी ऑव पाली प्रोपर नेम्स, जिल्द २, पृ० १५९ आदि, महाभारत १२.१९०.३।

३. औपपातिकसूत्र ३८, पृ० १७२-७६

श्रावस्ती मे निर्ग्रन्थ प्रवचन के रहस्यो का जानकार एक पिंगल नामक निर्ग्रन्थ रहता था। भगवान महावीर की वाणी उसने सुनी थी और वह उस पर अत्यन्त श्रद्धा रखता था। एक वार पिंगल निर्ग्रन्थ स्कन्दक परिव्राजक के पास आया और उसे आक्षेपात्मक भाषा मे पूछा—"मागध! क्या तुम वता सकते हो, यह लोक सान्त है या अनन्त? जीव सान्त है या अनन्त? सिद्धि एव सिद्ध सान्त है या अनन्त? किस प्रकार की मृत्यु प्राप्त होने से पुनर्जन्म का अवरोध हो सकता है? क्या तुम मेरे इन प्रश्नो का समाधान कर सकोगे?[६६]

पिंगल के द्वारा इस प्रकार के गम्भीर प्रश्न सुनकर स्कन्दक विचार मग्न हो गया। उसे इन प्रश्नो का उत्तर नही सूझा। पिंगल के द्वारा दो-तीन वार पूछने पर भी वह मौन रहा, और मन-ही-मन अपने शास्त्रो पर शका होने लगी, जहाँ इस प्रकार के प्रश्नो पर कही कोई चिन्तन नही किया गया। उसकी स्व–आगम श्रद्धा विचलित हो गई, और वह इनका समाधान पाने को आतुर हो उठा। उसी समय स्कदक ने लोगो मे एक चर्चा सुनी कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर आज कृतंगला नगरी के छत्र पलाश उद्यान मे पधारे हैं। उन महाभाग के दर्शन अभिवादन से तो परम लाभ प्राप्त होता ही है, किन्तु उनके दर्शन तो दूर रहे, तो उनका नाम गोत्र सुनने से भी मनुष्य का कल्याण हो जाता है। उनके उपदेश से सव प्रकार के सशय विनष्ट हो जाते हैं और आत्मा परम समाधि को प्राप्त होता है।"

जनता के मुख से इस प्रकार का सवाद सुनते ही स्कन्दक के विचारो मे एक हलचल हुई, उसे एक मार्ग दीखपडा, अपनी शकाओ का समाधान प्राप्त करने की वलवती जिज्ञासा उसमे जगी। वह अपने स्थान पर आया, त्रिदण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्ष माला, आसन आदि लेकर वह भी भगवान महावीर के समवसरण की ओर चल पडा।

---

६६. मागहा! किं स अते लोए, अणते लोए?
सअते जीवे, अणते जीवे?
स अंता सिद्धि अणता सिद्धि?
स अते सिद्धे, अणते सिद्धे?
केण वा मरणेण मरमाणे जीवे वड्ढति वा हायति वा?

—भगवती सूत्र २।१

भगवान महावीर ने गौतम को सबोधित करके पूछा—"गौतम ! क्या तुम अपने चिर परिचित पूर्व जन्म के मित्र को देखना चाहते हो" ?

गौतम ने आश्चर्य पूर्वक भगवान की ओर देखा, उनकी भावना मे आश्चर्य था, जिज्ञासा थी ! भगवान ने कहा—"गौतम तुम आज अपने पूर्व परिचित मित्र को देखोगे ?"[६७]

गौतम अभी भी भगवान की रहस्य भरी वाणी को नही समझ सके ! उन्होंने पूछा—"भगवन् ! वह मित्र कौन है, जिसे मैं आज देखूँगा ?"

भगवान ने स्कदक का परिचय देते हुए वताया—"वह स्कन्दक परिव्राजक तुम्हारे पूर्व जन्म का मित्र है, उसके मन मे शका हो जाने से वह समाधान पाने के लिए अभी आ रहा है। कुछ समय वाद वह तुम्हारे निकट आयेगा और तुम उसे देखोगे।"

गौतम के हृदय मे मित्र दर्शन की उत्कण्ठा जगी और साथ ही उसके कल्याण की कामना भी। वस्तुत सच्चा मित्र वही होता है जो कल्याण-सखा होता है। गौतम ने भगवान से पूछा—"भन्ते ! मेरे पूर्व जन्म का मित्र स्कदक क्या आपके पास धर्म श्रवण कर दीक्षित हो सकेगा ?"

भगवान ने इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' मे दिया। तभी स्कन्दक आते हुए दिखलाई पडे। गौतम श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि थे, और स्कन्दक एक परिव्राजक परम्परा का विद्वान ! फिर भी गौतम के मन मे स्कन्दक के प्रति आदर जगा, सामान्य शिष्टाचार और स्वागत सत्कार की विधि के अनुसार वे भगवान के पास से उठे दस-वीस कदम आगे वढ़े और स्नेह एव माधुर्य से छलछलाई आँखो से हर्ष व्यक्त करते हुए सभ्य, शिष्ट एव मधुर वाणी से वोले—"स्कन्दक ! आप आगए ? स्वागत है आपका, स्वागत है। वहुत वहुत स्वागत है। आपका विचार, आपकी धर्म जिज्ञासा प्रशसनीय है।[६८] पिंगल निर्ग्रन्थ के प्रश्नो द्वारा आपके मन मे जो जिज्ञासा जगी है अत्र उसका समाधान प्रभु से प्राप्त कीजिए !"

---

६७. दच्छसिण गोयमा ! पुव्व सगय।
क ण भते ?
खदय नाम !　　—भगवती २।१.

६८. हे खंदया ! सागय, खदया ! सुसागय,
अणुरागयंखदया ! सागय मणुरागय खदया !　　—भगवती २।१.

गौतम के इस प्रकार के निश्छल स्नेह एव सन्मान भरे वचनो को सुनकर परिव्राजक स्कन्दक पुलकित हो उठा। साथ ही उसके हृदय की गुप्त जिज्ञासा की चर्चा सुनकर उसे सुखद आश्चर्य भी हुआ। भगवान की सर्वज्ञता की बात जो उसने सुनी थी उस पर सहज ही विश्वास होने लगा। और वह इस प्रकार प्रसन्नभाव से गौतम के साथ भगवान के चरणो मे आकर वन्दन नमस्कार करके उपस्थित हुआ। स्कन्दक ने प्रभु से अपनी शकाओ का समाधान पाया, सम्यग् दृष्टिप्राप्त हुई और वह सर्वात्मना प्रभु के चरणो मे समर्पित हो गया।

भगवती सूत्र के वर्णनो से ज्ञात होता है कि स्कन्दक ने भगवान से जिन प्रश्नो का समाधान पाया तथा प्रकार के प्रश्न उस युग के दार्शनिक मस्तिष्क मे चारो ओर चक्कर काट रहे थे। अनेक परिव्राजक, सन्यासी तथा श्रमण उन प्रश्नो पर चिन्तन करते रहते, और यथार्थ समाधान न मिलने के कारण इधर उधर विद्वानो एवं धर्मप्रवर्तको के द्वार पर उनका समाधान खोजने घूमते रहते थे। बुद्ध के निकट भी इसी प्रकार के प्रश्न लेकर कई जिज्ञासु आते थे किन्तु बुद्ध उन प्रश्नो को अव्याकृत[६९] करार देकर उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते। जबकि महावीर इस प्रकार के प्रश्नो का समाधान करके जिज्ञासुओ को आत्मसाधना की ओर मोडने का उपक्रम रचते थे।

स्कन्दक की घटना से ज्ञात होता है कि वह अपनी शकाओ का समाधान प्राप्त कर परम सन्तुष्ट हुआ, भगवान का शिष्य बना। बारह अगो का अध्ययन करके जैन दृष्टि का परम रहस्य वेत्ता बना और फिर सम्यग्ज्ञान पूर्वक अनेक प्रकार की तप साधना करके समाधि मरण प्राप्त किया।[७०]

---

६९. बुद्ध ने जिन प्रश्नो को अव्याकृत कहा हैं, वे यो हैं—

१. क्या लोक शाश्वत है ?
२. क्या लोक अशाश्वत है ?
३. क्या लोक अन्तमान है ?
४. क्या लोक अनन्त है ?
५. क्या जीव और शरीर एक है ?

(अगले पृष्ठ पर देखिए)

स्कन्दक जैसे परिव्राजक परम्परा के सूत्रधार को भगवान महावीर की ओर प्रेरित करने मे पिंगल निर्ग्रन्थ भले ही निमित्त रहा हो, पर भगवान के प्रति उसकी श्रद्धा भक्ति को जगाने एव सयम साधना के प्रति आकृष्ट करने मे गौतम का मधुर व्यवहार एव हार्दिक स्नेह प्रमुख कारण रहा—यह नि सन्देह कहा जा सकता है। भगवान के द्वार पर गौतम द्वारा स्कन्दक का स्वागत और सम्मान जैन शिष्टाचार की एक महत्वपूर्ण घटना है। अन्य परम्परा के भिक्षुओ के साथ इस प्रकार के मधुर एव शिष्टाचार पूर्ण व्यवहार के उदाहरण आज नई सभ्यता के युग मे भी हमे उच्च व्यावहारिक दृष्टि प्रदान करते हैं।

निर्भीक शिक्षक

गौतम जितने व्यवहार कुशल थे, उतने ही स्पष्ट वक्ता और निर्भीक शिक्षक भी थे। प्राय व्यवहार कुशलता को चाटुकारिता का रूप दे दिया जाता है, उसे एक प्रकार की खुशामद या 'गंगा गये गगादास जमुना गये जमुनादास' की नीति मानी जाती है, किन्तु यह हमारे मन की भ्रान्ति तथा आत्मविश्वास की दुर्बलता है। व्यवहार कुशलता के साथ स्पष्टवादिता एवं निर्भीक शिक्षक होने से कोई विरोध नही है, अपितु ये गुण तो व्यवहार कुशलता को और चमका देने वाले हैं—यह वात गौतम और उदकपेढाल (पार्श्वनाथ के शिष्य) के वीच हुए वार्तालाप के अनन्तर उनके व्यवहार पर की गई गौतम की टीका से स्पष्ट हो जाता है।[७१]

उदक पेढाल ने अनेक प्रश्न किये थे और गौतम ने उनका उचित समाधान भी दिया। पर उसके व्यवहार से गौतम को प्रतीत हुआ कि उसमे कुछ अपने ज्ञान का अहकार आ गया है, और वह इतर श्रमण ब्राह्मणो पर कुछ-कुछ कटु आक्षेप एव

---

६. क्या जीव और शरीर भिन्न हैं?
७. क्या मरने के वाद तथागत नही होते?
८ क्या मरने के वाद तथागत होते भी हैं, और नही भी होते?
९. क्या मरने के वाद तथागत न होते हैं और न नही होते हैं?

—मज्झिम निकाय, चूलमालुंक्य सुत्त ६३
—दीघनिकाय, पोट्ठ पाद सुत्त, १।९,

७०. भगवती सूत्र २।१

७१. संवाद का पूरा विवरण देखिए परिसंवाद खण्ड मे

शाब्दिक प्रहार करने मे भी नही चूकता है तो गौतम ने उसे प्रेम पूर्वक शिक्षा के रूप मे कहा—'आयुष्मन् ! जो साधक पाप कर्मों से मुक्त होने के लिये सम्यक् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की आराधना कर रहा हो, वह यदि दूसरे श्रमण-ब्राह्मणो की अवहेलना एवं निन्दा करता है, (भले ही वह अपने मन मे उन्हे अपना मित्र समझता हो) तो उसे परलोक मे कल्याण प्राप्त नही होता।"[७२]

सभवत गौतम की शिक्षा उदक पेढाल पुत्र के मन मे चुभ गई हो, उसे अपनी वृत्ति पर कुछ झिझक आई हो और इसलिए वह इतनी तत्त्वचर्चा कर चुकने के वाद भी विना किसी प्रकार के अभिवादन एव कृतज्ञता ज्ञापन के चल पडा तो गौतम को उसका अविनयपूर्ण व्यवहार अखरा। एक श्रमण, जिसके कि धर्म का मूल ही विनय है[७३] विनय, सभ्यता, शिष्टाचार की शिक्षाओ से जिसके धर्मग्रन्थ भरे पडे हैं[७४] वह यो शंका समाधान कर्ता के प्रति अविनय पूर्ण व्यवहार करे यह नितान्त अनुचित था और गौतम जैसे महान साधक, उपदेशक एव विनयमूर्ति इस वात को यो ही गवारा नही कर सकते थे। गौतम ने उदक पेढालपुत्र को उठते-उठते पुकारा—"आयुष्मन् ! किसी श्रमण निर्ग्रन्थ के पास यदि धर्म का एक भी श्रेष्ठ पद, एक भी सुवचन— "एगमवि सुवयणं" सुनने को मिला हो, तथा किसी ने अनुग्रह करके योगक्षेम का उत्तम मार्ग दिखाया हो, तो क्या उसके प्रति कुछ भी सत्कार, सम्मान व आभार प्रदर्शित किये विना चले जाना चाहिए ?"[७५]

गौतम के कहने का ढंग इतना स्नेहपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी था कि उदक पेढाल पुत्र के पैर वहीं रुक गये, वह आश्चर्यपूर्वक गौतम स्वामी की ओर देखने लगा, उसकी आँखो मे कृतज्ञता के भाव आने लगे, और वह सभ्रमित-सा हो गया कि मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए ?

---

७२. आउसतो उदगा ! जे खलु समणं वा माहण वा परिभासेइ मितिमन्न ति.... ..
से खलु परलोग पलिमंथत्ताए चिट्ठइ। —सूत्र कृताग २।७।३६

७३. एव धम्मस्स विणओ मूल—दशवै० ९।२।२

७४. (क) जस्सतिए धम्मपयाइ सिक्खे तस्सतिए वेणइयं पउजे—दशवै० ९।१।१-२
(ख) देखिए उत्तराध्ययन विनय अध्ययन गाथा १८-२३

७५. उदगा ! जे खलु तहा भूतस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिए एगमपि आरिय सुवयण सोच्चा निसम्म ' आढाई पुरिजाणति वदति नमंसति' ''।
सूत्र कृताग २।७।३७

गौतम ने आगे कहा—"आयुष्मन् ! मेरे विचार से ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति को पूज्य बुद्धि से नमस्कार करना चाहिए, उसका सत्कार एव सम्मान करना चाहिए। उन्हे कल्याणकारी मगलमय देवतास्वरूप मानकर उनकी पर्युपासना करनी चाहिए।"

गौतम के 'हिय मिय विगयभय' हित-मित एव निर्भीक वचनो को सुनकर उदक पेढाल का हृदय गद्गद् हो गया। उसने क्षमा मागते हुए विनयपूर्वक अपनी भूल स्वीकार की और कहा—"भगवन् ! मुझे पहले कभी इस प्रकार की शिक्षा सुनने का अवसर ही नही मिला, अत मैं विनय के आचार से भी अनभिज्ञ रहा। आपके शब्दो से अब मुझे अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ है, साथ ही आपके हितकारी वचनो पर विश्वास भी हुआ है, श्रद्धा एवं प्रतीति हुई है, अब मैं अपने कर्त्तव्य एव धर्म को पहचान पाया हू और मैं चाहता हू कि आपका शिष्यत्व स्वीकार करूँ।"[७६]

उदकपेढालपुत्र की भावना को समझकर गौतम ने उसे चतुर्याम धर्म के स्थान पर पंचयाम धर्म की शिक्षा दी और भगवान महावीर के श्रमणसघ मे सम्मिलित किया।

उदक पेढाल पुत्र पार्श्वनाथ की प्राचीन परम्परा से सबधित था। गौतम ने उसके प्रश्नो का संतोषजनक समाधान देकर ही इति नही समझा। किन्तु जब उसे व्यवहार के क्षेत्र मे अनभिज्ञ एव असस्कृत देखा तो कर्त्तव्य का उचित बोध देने मे भी नही चूके। भले ही उनकी 'हित शिक्षा' एक बार उसे कडवी लगी हो, किन्तु वह मिसरी सी मधुर होने के साथ वजनदार भी थी, माधुर्य के साथ चोट करने की क्षमता उसमे थी, उसी मधुर चोट ने उदक पेढाल पुत्र को अपने कर्त्तव्य, विनय-व्यवहार एव आत्मधर्म के प्रति जागृत कर दिया और फलत. वह सही मार्ग पर आ सका। इस घटना मे गौतम के अन्तर का सच्चा गुरुत्व उजागर हुआ है जो शिष्य के कल्याण के लिए सदा निर्भय होकर हित बुद्धि से मार्गदर्शन करता रहता है।

---

७६. एतेसिण भते ! पदाणं पुव्विं अन्नाणयाए असवणयाए अबोहिए अणभिगमेणं अदिट्ठाणं असुयाण""एयमट्ठं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि एवमेव से जहेय तुब्भे वदह—सूत्र कृताग २।७।३८

कुशल उपदेष्टा

गौतम के व्यक्तित्व मे जिस प्रकार निर्भीक शिक्षक का रूप निखरा है, उसी प्रकार उनमे कुशल उपदेशक के गुण भी प्रकट हुए हैं। सस्कृत की एक सूक्ति है—**वक्ता दश सहस्रेषु**[७७] हजार मे कोई एक पडित होता है, और दश हजार में कोई एक वक्ता। हर विद्वान् शास्त्रज्ञ वक्ता नही हो सकता। आचार्य सिद्धसेन ने कहा है—"हर कोई सिद्धान्त का ज्ञाता भी निश्चित रूप से प्ररूपणा करने योग्य प्रवक्ता नही हो सकता।"[७८] भगवान महावीर ने बताया है—"धर्म का उपदेश करने वाला निर्भय एव सम-दृष्टि होना चाहिए, साथ ही उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि जिसे उपदेश दिया जा रहा है उसकी पात्रता क्या है? उसके विचार, उसकी श्रद्धा एव योग्यता कैसी है? इन विषयो की सम्यक् आलोचना करके ही प्रवक्ता धर्म का उपदेश करे।"[७९] गणधर गौतम की उपदेश शैली मे इन गुणो का सामजस्य हुआ है, यह कहा जा सकता है? भले ही आज गौतम द्वारा उपदिष्ट वचन, ग्र थ निबद्ध हमारे समक्ष न रहे हो, किन्तु जिस प्रकार की घटनाएँ उल्लिखित हैं, उसमे गौतम के उपदेश की फलश्रुति प्राय सार्थक रूप मे लक्षित हुई है। गौतम ने जिन-जिन को उपदेश दिया, वे चाहे सामान्य ग्रामीण व अबोध किसान रहे हो, या कुशल गाथापति, परिव्राजक एव सम्राट रहे हो, वे प्राय उपदेश से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने हैं, श्रमण धर्म स्वीकार करके साधना पथ पर अग्रसर हुए हैं ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं।[८०]

---

७७. शतेषु जायते शूर सहस्रेषु च पडित।
वक्ता दश सहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

७८. णवि जाणओ वि णियमा पण्णवणा णिच्छिओ णाम।
—सन्मति तर्क ३।६३

७९. जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ
अवि य हणे अणाइयमाणे, इत्थपि जाण सेयत्ति नत्थि? केय पुरिसे कं च नए?
—आचाराग १।२।६

८०. देखिए—(क) उत्तराध्ययन (टीका) अ० १०
(ख) उपदेशपद सटीक गा० ७
(ग) त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित १०।९

एक बार भगवान महावीर जनपद विहार करते हुए किसी वन से गुजर रहे थे। मार्ग मे किसी खेत पर एक किसान को हल चलाते हुए देखा। चिल-चिलाती धूप मे वह किसान दुर्बल बैलो को बडी नृशंसता से पीट-पीट कर आगे धकेल रहा था। बैलो की पीठ पर रस्सियो के दाग जम गये थे, बिचारे भूखे प्यासे बैल धूप मे हल के जुए को गिरा कर बैठने की चेष्टा कर रहे थे और किसान उन्हे बेत से पीट कर हांकने का यत्न कर रहा था। करुणावतार भगवान महावीर ने जब यह हृदय द्रावक दृश्य देखा तो गौतम से कहा—"गौतम ! जाओ इस किसान को उपदेश से प्रतिबुद्ध करो।"

गौतम प्रभु की आज्ञा लेकर किसान के निकट पहुँचे। बैल हांफ रहे थे, फिर भी किसान उन पर बेत की वर्षा करता हुआ आगे धकेल रहा था। गौतम ने किसान को सरल एव सीधी भाषा मे उपदेश दिया। भले ही किसान के समक्ष रोटी की समस्या रही हो, पेट भरने की पुकार ने उसे इस क्रूरता का पाठ सिखाया हो, पर उसका एकमेव समाधान 'अर्थ' ही तो नही था। हृदय परिवर्तन से भी उसका कोई समाधान निकल सकता था और वही समाधान गौतम ने दिया। कृषक पर उपदेश का ऐसा जादू हुआ कि वह खेती और बैलों को छोडकर गौतम का शिष्य बन गया। गौतम ने उसे अपने धर्माचार्य के पास चलने को कहा—किसान ने कहा—मेरे गुरु तो आप ही हैं। तब गौतम ने उसके समक्ष भगवान के दिव्य अतिशयो का वर्णन कर उस नव प्रव्रजित शिष्य को भगवान के निकट लेकर आये। नव प्रव्रजित किसान जैसे जैसे भगवान के समीप आया उसके हृदय मे भय एवं आवेश की भावना जगने लगी। भगवान महावीर को देखते ही उसका रोम-रोम काप उठा जैसे वर्फीले तूफान से पौधे काप उठते हैं।

उसने कहा—मैं इनके पास नही जाऊँगा।

गौतम—ये ही तो अपने धर्माचार्य हैं।

किसान—'ये ही तुम्हारे गुरु हैं तो तुम्ही रखो, मुझे नही चाहिए' यह कह कर वह भयभ्रात होकर पीछे से खिसक गया। गौतम स्वामी ने जब नव-शिष्य को भगवान के समक्ष उपस्थित करने की भावना से पीछे देखा, तो वह तो जगल की ओर उलटे पाँवो दौड रहा था जैसे कोई हरिण बधन से छूटकर दौड रहा हो। आश्चर्य चकित गौतम ने भगवान से पूछा—"भन्ते ! यह क्या अभूतपूर्व देख रहा हूँ। भयत्रस्त एव अशरण व्यक्ति आपके चरणो मे आकर त्राण एव शरण पाते है, किन्तु यह मेरा नव प्रव्रजित शिष्य तो आपको देखकर भयभीत हुआ भाग रहा है।"

भगवान ने समाधान किया—"गौतम ! यह पूर्व वद्ध प्रीति एवं वैर का खेल है। इस किसान के जीव की तुम्हारे साथ पूर्वप्रीति है, अनुराग है, इसलिए तुम्हे देखकर इसके मन मे अनुराग पैदा हुआ और तुम्हारे उपदेश को सुनकर इसे सुलभ बोधित्व की प्राप्ति हुई। मेरे प्रति अभी इसके सस्कारो मे वैर एव भय की स्मृतियाँ शेष हैं, इसीलिए यह मुझे देखकर पूर्व वैरस्मरण के कारण भयभीत होकर भाग छूटा।"

गौतम के आग्रह पर भगवान ने अपने त्रिपृष्ठ वासुदेव के जीवन की घटना सुनाई। "गौतम ! इस जन्म से नौ जन्म पूर्व मे त्रिपृष्ट नाम का राजकुमार हुआ था। तुम मेरे प्रिय सारथी थे। एक बार मैंने एक उपद्रवी केशरी सिंह को पकड कर हाथो से चीर डाला था। उस समय सिंह की अंतिम सास जब छूट रही थी तब तुमने उसे प्रिय वचनों से संतुष्ट किया एव मनुष्य के हाथो से मारे जाने पर अफसोस न करने को सान्त्वना दी थी।[८१] उन अन्तिम समय के अनुरागमय वचनो की स्मृति के कारण तुम्हारे प्रति इसके मन मे अनुराग के सस्कार जन्मे और मेरे हाथ से मृत्यु होने के कारण मेरे प्रति इसके मन मे वैर एवं भय की भावना का सचार हुआ।"[८२]

यह घटना सूत्र काफी लम्बा है, और इसके बीज भगवती सूत्र [८३] एवं उत्तराध्ययन सूत्र[८४] मे विद्यमान हैं, जिनसे अनेक अन्य घटनाएँ भी पल्लवित हुई है। जिसकी चर्चा अगले पृष्ठो पर की जा रही हैं।

इस घटना मे सूक्ष्म रूप से गौतम की उपदेश कुशलता की एक विरल झाँकी मिलती है कि अज्ञान किसान को भी उन्होने उपदेश देकर सुलभ बोधि बना दिया। यह तो स्पष्ट है कि किसान के समक्ष गौतम ने गम्भीर तत्त्व ज्ञान की गुत्थियाँ नही सुलझाई होगी। उसे तो उस सामान्य एवं सरल उपदेश की आवश्यकता थी जो उसके सरल हृदय को छू सके और मोटी बुद्धि की पकड मे आ सके। और यही उपदेशक की

---

८१. (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३४
    (ख) त्रिषष्टिशालाका० १०।१

८२. त्रिषष्टिशलाका० १०।९

८३. भगवती शतक १४।७

८४. उत्तरा० अ० १०।२८ (टीका)

कुशलता है कि वह गम्भीर एवं सरल से सरलतम भाषा मे अपनी बात का प्रभाव दूसरो पर डाल सके, और उन्हे अपना अनुयायी बना सके।

प्रबुद्ध संदेशवाहक

•

गौतम की उपदेश कुशलता के साथ ही उनके व्यक्तित्व की एक और विशेषता है कि वे भगवान महावीर के प्रिय शिष्य होने के साथ ही विश्वस्त सदेश वाहक भी थे। भगवान महावीर जब अपने शिष्यो को विशेष धर्म सदेश देते तो प्राय वह गणधर गौतम के माध्यम से दिया जाता था। वैसे सामान्य रूप मे श्रमण वर्ग को जो शिक्षात्मक सदेश दिया जाता था वह भी गौतम के माध्यम से, या गौतम को सबोधित करके दिया जाता था। उत्तराध्ययन का दशवाँ अध्ययन इसका स्पष्ट प्रमाण है जहाँ बार-बार गौतम को सबोधित करके —"**समयं गोयम मा पमायए**" का घोष ध्वनित हो रहा है। भगवती सूत्र मे भी इस प्रकार के अनेक स्थल हैं जिनमे उपदेश का माध्यम गौतम को बनाया गया है।[८५] दूसरे प्रकार के कुछ विशेष सदेश जब भगवान महावीर किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य करके गौतम को देते तो गौतम उन्हे यथातथ्य रूप मे उस पात्र तक पहुँचाते—यह भी एक घटना से स्पष्ट होता है।

राजगृह निवासी गाथापति महाशतक भगवान महावीर का उपासक था। उसके पास विपुल धन था। उसने तेरह स्त्रियो के साथ विवाह किये। रेवती नाम की उसकी पत्नी, जो बडी क्रूर एवं विशेष कामासक्त थी। उसने अपनी सभी सौतो को मरवा डाला था। वह मद्य एव मास का भी सेवन करती थी। रेवती के स्वभाव से महाशतक को घृणा हो गई। वह उससे विरक्त होकर उपवास पौषध आदि आत्म-साधना मे प्रवृत्त हो गया।

एकबार रेवती मद्य के नशे में चूर हुई अत्यन्त कामातुर एव निर्लज्ज होकर महाशतक के पास आई। उसे अपने कामपाश मे बाधने के प्रयत्न करने पर भी जब महाशतक उससे सर्वथा विरक्त रहा, तो वह कहने लगी—'प्रिय! मुझे मालूम है तुम्हारे सिर पर धर्म का नशा चढा है, तुम मुक्ति के इच्छुक होकर यह विरक्ति का ढोग रच रहे हो, पर तुम नही जानते कि यदि मेरी इच्छा को तृप्त कर मेरे साथ काम भोग सेवन करते

---

८५. भगवती सूत्र ७।२।८।१० आदि

हो तो वह मुक्ति के सुख से भी अधिक आनन्दप्रद है। आओ, मेरी इच्छा को तृप्त करो।"

रेवती ने दो-तीन वार इस प्रकार महाशतक से निर्लज्जता पूर्ण आग्रह किया, अनेक प्रकार के कामोद्दीपक हावभाव दिखलाये। पर महाशतक उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहकर अपने सकल्प को और अधिक सुदृढ बनाने लगा। महाशतक के समक्ष अव इस प्रकार के प्रसंग आये दिन आने लगे। वह तपस्या एव ध्यान से अपने शरीर को क्षीण एव सकल्पो को वज्रसम अडिग बनाता रहा। जीवन के सध्या काल मे महाशतक ने अपने समस्त पापो एव अतिचारो की आलोचना करके आजीवन अनशन ग्रहण किया। जीवन एव मरण की आकाक्षा से मुक्त होकर समाधिपूर्वक धर्म जागरण करते हुए आनन्द श्रावक की भाँति उसे अवधि ज्ञान प्राप्त हुआ।

एकदिन जबकि महाशतक अनशन मे धर्मजागरणा कर रहा था, रेवती पुन मद्य के नशे मे छकी हुई उसके निकट आई और विह्वलता पूर्वक काम प्रार्थना करने लगी। महाशतक मौन रहा। रेवती ने दूसरी बार भी उससे आग्रह किया, महाशतक फिर भी मौन था। अव तीसरी बार रेवती कामान्ध होकर उसे धिक्कारने लगी। उसके व्रतो एव आचार पर तिरस्कार पूर्वक आक्षेप करने लगी और अन्त मे जव अत्यन्त काम विह्वल हो गर्हित आचरण करने पर उतारू हुई तो महाशतक को क्रोध आ गया। उसने रेवती को अभद्र व्यवहार के लिए फटकारा और अवधि ज्ञान से उसका अन्धकार पूर्ण भविष्य वताते हुए कहा—'तू सात दिन के भीतर रोग से पीडित होकर मरेगी एव रत्नप्रभा नरक के लौलुच्य नामक नरकवास मे चौरासी हजार वर्ष की आयु प्राप्त करके अत्यन्त उग्र कष्ट पायेगी।"

महाशतक की आक्रोश पूर्ण वाणी सुनकर रेवती अत्यन्त घवरा उठी। उसे लगा पति ने मुझे शाप दे दिया है। वह रोती पीटती घर आई। भयानक रोग से पीडित होकर अन्त मे सातवें दिन असमाधि पूर्वक जीवन की अन्तिम सास छोड दी।[८६]

---

८६. भीया, तत्था, नसिया, उव्विग्गासण्णाय भया ... ...अलसएण वाहिणा अभिभूया अट्ट दुहट्ट वसट्टा काल मासे काल किच्चा इमीसे रयणप्पभाए नेरइयत्ताए उववन्ना।

—उवासगदशा ८।

भगवान महावीर ने महाशतक श्रावक के इस आक्रोश पूर्ण कथन की चर्चा गौतम से की। सारा घटना चक्र बताते हुए भगवान ने कहा—"गौतम ! श्रावक को इस प्रकार की, सत्य होते हुए भी अनिष्ट, अप्रिय, जिसे सुनने पर दुःख होता हो, विचार करने पर मन को चुभती हो, ऐसी वाणी नही बोलना चाहिए।"[८७] महाशतक श्रावक ने रेवती को इस प्रकार के आक्रोश पूर्ण वचन कहकर अपने व्रत को दूषित किया है, अत तुम जाकर उसे कहो, वह अपने इस अतिचार की आलोचना, आत्म-निन्दा करके आत्मा को विशुद्ध बनाए।"

भगवान का धर्म सदेश लेकर गौतम राजगृह मे महाशतक श्रावक के पास आये। महाशतक भगवान गौतम को आते देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, विनय पूर्वक वन्दना की। गौतम ने महाशतक को भगवान महावीर का धर्म संदेश सुनाते हुए कहा—"देवानुप्रिय ! तुमने जो इस प्रकार के आक्रोश पूर्ण कटुवचन कहकर रेवती की आत्मा को संतप्त किया, भयभीत किया यह उचित नही था। तुम्हे शांति एव मौन ही श्रेयस्कर था। तुम अपनी भूल का प्रायश्चित्त करो, आलोचना करके आत्मा को निर्दोष बनाओ।"

गौतम के कथनानुसार महाशतक ने आत्म-आलोचना करके अन्त मे समाधि मरण प्राप्त किया।

अनन्य प्रभुभक्त

●

गौतम के जीवन के इन विविध रूपो को देखने से ज्ञात होता है कि वे जितने आत्म-साधना के प्रति निष्ठाशील थे, उतने ही लोककल्याण की भावना से कर्त्तव्य के प्रति सतत जागरूक रहते थे। भगवान महावीर के लोक कल्याणकारी सदेश को जन-जन तक पहुँचाने मे वे प्रतिक्षण प्रस्तुत थे। गागलि नरेश को प्रतिबोध देने हेतु पृष्ठचपा जाने की घटना इस बात की साक्षी है कि वे भगवान महावीर के सकेत के अनुसार अपने संपूर्ण जीवन को न्यौछावर करने के लिए भी कृतसंकल्प थे।

---

८७. नो खलु कप्पइ गोयमा ! ········संतेहि तच्चेहि तहिएहि, सब्भूएहि अणिट्ठेहि अकंतेहि अप्पिएहि अमणुण्णेहि ·· वागरणेहि वागरित्तए।

—उवासग दशा ८।

एक वार साल महासाल नामक राजर्षियो ने भगवान महावीर से पृष्ठचपा के गागलि नरेश को प्रतिवोध देने के लिए जाने की आज्ञा मागी। गागलि राजर्षि के गृहस्थ जीवन के भानजे थे। उपयुक्त अवसर देखकर भगवान ने गौतम स्वामी के साथ उन्हे पृष्ठचपा की ओर भेजा।

गागलि नरेश ने गौतम स्वामी एव अपने मामा मुनि के आने का सवाद सुना तो वह प्रसन्नता पूर्वक उन्हे वदना करने गया। गौतम स्वामी की मधुर उपदेश शैली से प्रभावित होकर गागलि अपने पुत्र को राज्य तिलक करके स्वय प्रव्रजित हो गया। गागलि के साथ ही उसके पिता पिठर एव माता यशोमति ने भी दीक्षा ग्रहण की।

अपने आगमन का लक्ष्य पूरा करके गौतम स्वामी ने पाचो शिष्यो के साथ चम्पा की ओर विहार किया जहाँ भगवान महावीर धर्मदेशना दे रहे थे। मार्ग मे साल-महासाल, पिठर, गागलि मुनि एव यशोमती साध्वी पाचो ही अपने-अपने शुद्ध विचारो की उत्कृष्टता के कारण क्षपक श्रेणी को प्राप्त करके केवल ज्ञान की भूमिका पर पहुँच गये। उनके केवलज्ञान की घटना गौतम को विदित नही हुई। जव वे चम्पा मे पहुँच कर भगवान के समवसरण मे प्रविष्ट हुए और प्रभु की वंदना प्रदक्षिणा करके केवली परिषद् की ओर जाने लगे तो गौतम स्वामी को उनके व्यवहार की अनभिज्ञता पर आश्चर्य हुआ। उन्होने मुनियो को टोकते हुए कहा—"मुनियो! क्या आपको जिनेन्द्र भगवान की धर्मपरिषद् की विधि का ज्ञान नही है? आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

गौतम स्वामी के कथन पर भगवान ने कहा—"गौतम! मुनियो का आचरण ठीक है ये केवल ज्ञानी हो गए है तुम केवली की अशातना मत करो।"[८८]

---

८८. त्रिषष्टिशलाका० १०/९ श्लोक १६६-१६७

इसी घटना के साथ जुडी हुई एक अन्य घटना भी प्रसिद्ध है जिसकी चर्चा आचार्य अभयदेव (भगवती टोका १४।७) एव नेमिचन्द्र ने (उत्तराध्ययन १०।१) मे की है—वह इस प्रकार है—

एक वार गौतम स्वामी अष्टापद पर्वत पर गए। वहाँ कौडिन्य, दिन्न एव सेवाल नामक तीन तापसो के साथ पाँच-पाँच सौ तापसो के समूह अष्टापद की यात्रा को आए हुए थे। वे अष्टापद पर चढने मे असमर्थ हो रहे थे। गौतम स्वामी अपने ऋद्धिवल से अष्टापद पर तुरन्त चढ गये।

(अगले पृष्ठ पर देखिए)

हाँ तो भगवान की वाणी सुनकर गौतम को बडा आश्चर्य हुआ। साथ ही अपनी छद्मस्थता पर उन्हे खेद भी हुआ कि ये मेरे शिष्य तो सर्वज्ञ हो गए और मैं अभी तक छद्मस्थ ही रहा। गुरु जी गुड ही रहे और चेले शक्कर हो गये—कहावत जैसी बात हो गई ?

मुक्ति का वरदान

●

प्रस्तुत घटना ने गौतम के मन को बहुत झक-झोरा, शिष्यो की प्रगति एव अभिवृद्धि से उनके उदार मन को कोई ईर्ष्या नही थी, किन्तु स्वय इतनी तपस्या, साधना, ध्यान, स्वाध्याय आदि करने पर, तथा प्रभु के प्रति अनन्य श्रद्धा रखने पर भी अब तक छद्मस्थ ही रहे इस बात से उनके मन को बडी चोट पहुँची। वे अपने मन की गहराई मे उतरे होंगे। आत्म-निरीक्षण करने लगे होंगे कि 'आखिर मेरी साधना मे क्या कमी है ? मेरे अध्यात्म योग मे कौन सी रुकावट आ रही है जिसे तोड सकने मे मैं अब तक असमर्थ रहा हूँ।' हो सकता है जब इस प्रकार का कोई कारण उनके सामने नही आया हो तो वे बहुत खिन्न हुए हो, चिंतित हुए हो और तब भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य की खिन्नता एव मनोव्यथा दूर करने के लिए सान्त्वना देने के रूप मे कहा—'गौतम ! तुम्हारे मन मे मेरे प्रति अत्यत अनुराग है, स्नेह है, उस स्नेहबधन के कारण ही तुम अपने मोह का क्षय नही कर पा रहे हो, और वही मोह तुम्हारी सर्वज्ञता मे मुख्य अवरोध बना हुआ है।" प्रभु

तापसो को आश्चर्य हुआ "यह हृष्ट-पुष्ट मासल शरीर वाला साधु इतनी त्वरित गति से कैसे अष्टापद का आरोहण कर सका, जबकि हम बहुत समय से प्रयत्न करते हुए भी समर्थ नही हो रहे हैं।"गौतम स्वामी के वापस आने पर उनसे वार्तालाप किया और पन्द्रह सौ तीन तापसो ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। गौतम स्वामी ने उनको अपनी (अक्खीणमहानस) लब्धि के बल खीर से पारणा करवाया और भगवान महावीर के समवसरण मे उनको लेकर आये। गौतम स्वामी एव भगवान के गुण चिन्तन से उत्कृष्ट परिणाम आने पर उन्हे भी कैवल्य प्राप्त हो गया, वे भी उसी प्रकार केवली परिषद् में जाने लगे और गौतम स्वामी ने टोका तब भगवान ने स्थिति का स्पष्टीकरण किया।

देखिए—कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित, गणधरवाद की भूमिका (दलसुख मालवणिया पृ० ६६)।

महावीर की यह वाणी भगवती सूत्र मे इस प्रकार अक्षर निबद्ध हुई है[८९]—"गौतम तुम गहुत अतीत काल से मेरे साथ स्नेह बन्धन मे बधे हो, तुम जन्म-जन्म से मेरे प्रशंसक रहे हो, मेरे परिचित रहे हो, अनेक जन्मो मे मेरी सेवा करते रहे हो, मेरा अनुसरण करते रहे हो, और प्रेम के कारण मेरे पीछे-पीछे दौडते रहे हो। पिछले देव भव, एव मनुष्य भव मे भी तुम मेरे साथी रहे हो। इस प्रकार अपना स्नेह बन्धन सुदीर्घ कालीन है, मैंने उसे तोड डाला है, तुम नही तोड पाए। विश्वास करो, तुम भी (अति शीघ्र वधन से मुक्त होकर) अब यहाँ से देह मुक्त होकर हम दोनो एक समान, एक लक्ष्य पर पहुँचकर भेद रहित तुल्य रूप प्राप्त कर लेंगे।"

भगवान का भक्त के प्रति यह आश्वासन वास्तव मे एक वहुत वडा आश्वासन है, जिसे सुनकर गौतम की समस्त खिन्नता, मनोव्यथा हवा मे उड गयी होगी और अपूर्व प्रसन्नता से रोम-रोम पुलक उठा होगा।

वैदिक भक्ति परम्परा मे जब भगवान भक्त पर प्रसन्न होता है, तो उसे पुन भक्त वनने का वरदान देता है, और भक्त इस भगवद् कृपा को सर्वश्रेष्ठ कृपा समझकर कृत-कृत्य हो जाता है। किन्तु जैन परम्परा भक्त को भक्त ही नही, भगवान बनने का वरदान देती है, और उसके भगवान स्वय अपने श्री मुख से कह रहे हैं—'तुम भी

---

८९. पिछली घटना चंपानगरी मे हुई है, और भगवान महावीर का यह कथन राजगृह मे हुआ है, सभवत इस वीच जैसा कि अष्टापद की घटना से परिलक्षित होता है वह घटना घटित हुई हो, और बार-वार ऐसी घटना होने से गौतम की खिन्नता वढी हो, और तब भगवान ने निम्न आश्वासन दिया हो—"चिर ससिट्ठोऽसिमे गोयमा। चिर सथुओऽसि मे गोयमा। चिर परिचिओऽसि मे गोयमा। चिर जुसिओऽसि मे गोयमा। चिराणुगओऽसि मे गोयमा। चिराणुवत्तीसि मे गोयमा! अणतर देवलोए, अणतर माणुस्सए भवे, किं पर मरणा कायस्स भेदा। इओ चुआ दोवितुल्ला एगट्ठा अविसेस मणाणत्ता भविस्सामो।

—भगवती सूत्र १४।७

गौतम से स्नेह वधन तोडने के लिये भगवान महावीर ने अनेक वार उपदेश किया होगा, वीतरागता की ओर मोडने का प्रयत्न किया होगा यह आगमो मे आये अनेक उपदेशो से ध्वनित होता है। उत्तराध्ययन १०।२८ मे भी गौतम को सम्बोधित करके कहा गया है—"वोच्छिद सिणेहमप्पणो कुमुय सारइयं पाणिना।"

—उत्त० १०।२८

मेरे समान सिद्ध बुद्ध मुक्त बनोगे।" इस वरदान को पाकर कौन भक्त प्रसन्नता से नही झूम उठेगा।

इस घटना से गौतम का भगवान महावीर के प्रति अनन्य स्नेह एव अद्वितीय भक्ति प्रकट होती है। और उसमे कितनी मधुरता है, कितनी एकनिष्ठता है यह तो आगमो के अनुशीलन से पद-पद पर प्रकट होती दिखाई देती है। एक भगवती सूत्र मे ही कई हजार वार-'गोयमा' इस सम्वोधन की आवृत्ति हुई है। अन्य आगमो भी सैकडो वार स्थान-स्थान पर भगवान अपने प्रिय भक्त-गौतम को "गोयमा।' सम्वोधन से जव पुकारते हैं तो लगता है सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय मे भी शायद ही ऐसा कोई जिज्ञासु एव अनन्य भक्त हुआ हो जिसे भगवान अपने श्री मुख से वार-वार पुकार रहे हो। भगवान के श्रीमुख से यह मधुर सवोधन सुनकर भक्त गौतम भी श्रद्धा गद्गद् होकर धन्य-धन्य हो उठते होगे। गौतम की एकनिष्ठा का उत्तर आगमो मे उन्ही की वाणी से दिया गया है। जव भगवान से किसी प्रश्न का समाधान गौतम को मिला तो वे एक अपूर्व प्रसन्नता एव श्रद्धा से भगवान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं—'**सेवं भंते ! सेवं भंते ! तहमेय भंते ! अवितह मेयंभते** !"—भगवन् ! आपने जैसा कहा वैसा ही है, आपका कथन सत्य है, पूर्ण सत्य है, मैं उस पर विश्वास करता हूँ, श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ।"

गुरु के समावान पर शिष्य का यह श्रद्धा एवं निष्ठा पूर्ण उत्तर वास्तव मे एक उदात्त परम्परा का प्रेरक है। गौतम जैसा व्यक्ति जो जीवन के प्रारम्भ मे प्रखर तार्किक रहा हो, स्वयं भगवान महावीर से वाद विवाद एव दर्शन की गम्भीर चर्चाओ से समाधान खोज रहा हो, वही भगवान के प्रति इतना श्रद्धा एव निष्ठा पूर्ण होकर समर्पित हो जाता है, यह वास्तव मे तर्क पर श्रद्धा की विजय का एक अकाट्य प्रमाण है, साथ ही भक्ति की एक निष्ठा का अपूर्व उदाहरण भी। गौतम के जीवन की इन्ही विरल विशेषताओ के कारण उन्हे अनन्य प्रभु भक्त कहा गया है।

महान जिज्ञासु

गणधर गौतम के व्यक्तित्व मे 'जिज्ञासा' तत्त्व प्रारम्भ से ही प्रवल रहा है यह पिछले घटना चक्र से स्पष्ट हो जाता है। जिज्ञासा ने ही उन्हे यज्ञ मण्डप से भगवान महावीर की ओर मोडा, जिज्ञासा ने ही उन्हे याज्ञिक ब्राह्मण से श्रमणत्व का परिवेष दिया और इस जीवित जिज्ञासा ने ही भगवान महावीर के उपदेशो एवं प्रवचनो को

गणिपिटक का रूप दिया। आज का उपलब्ध श्रुत साहित्य गौतम की जिज्ञासा का जीवित रूप है—यह कहने मे कोई अत्युक्ति नही होगी।

गौतम जब कभी किसी विशेष नई घटना को देखते, कोई नवीन चर्चा सुनते, किसी आश्चर्यकारी प्रसंग का ऊहापोह होता तो वे तुरन्त उस विषय मे जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते।

विपाक सूत्र[१०] मे एक घटना आती है। मृगाग्राम नगर मे विजय नामक क्षत्रिय राजा था जिसकी मृगादेवी नामक लावण्य युक्त सुन्दरी रानी थी। उस मृगादेवी को एक पुत्र हुआ जो जन्म से ही अँधा, वहरा, गूँगा था। जिसके हाथ, पैर, नाक, कान आदि भी नही थे। केवल अगहीन एक गोलमटोल आकृति थी। मृगादेवी उस वालक को अपने भूमि गृह मे रखती और उसका पालन पोषण करती।

एक वार श्रमण भगवान महावीर उस मृगाग्राम के चन्दन पादप नामक उद्यान मे पधारे। प्रभु का आगमन सुनकर नगर के हजारो श्रद्धालु दर्शनार्थ गये। नगर मे चारो ओर एक अपूर्व उत्सव जैसी हलचल मच गई थी। विजय क्षत्रिय भी भगवान का उपदेश सुनने गया।

उस ग्राम मे एक जन्म से अन्ध दरिद्र भिखारी रहता था। उसके सिरके केश अत्यन्त रूक्ष एव विखरे हुए, दीखने मे वडा कुरुप एव बीभत्स था। उसके गन्दे कपडो पर मक्खियो के झुण्ड के झुण्ड भिनभिनाते रहते। कोई उसके पास से गुजरना नही चाहता—ऐसी दरिद्रता की साक्षात् मूर्ति था वह जन्मान्ध भिखारी। एक कोई आँख वाला आदमी उसकी लकुटिया पकडकर द्वार-द्वार पर उसे घुमाता और भिक्षा माँग कर आजीविका करता। उस भिखारी ने नगर मे लोगो के आनेजाने का कोलाहल सुना तो किसी से पूछा—आज नगर मे क्या इन्द्रमहोत्सव, स्कन्दमहोत्सव आदि कोई उत्सव है? क्या वात है आज, इतनी हलचल क्यो?

भिखारी के प्रश्न को बहुतो ने सुना अनसुना कर दिया। किसी ने वताया—"तुझे मालुम नही? आज भगवान महावीर नगर के चन्दन पादप उद्यान मे पधारे हैं, उनकी वाणी सुनने को जनता उमडी जा रही है।" अधा भिखारी भी भगवान का उपदेश सुनने को उत्सुक हुआ और समवसरण की ओर गया। गणधर गौतम ने हजारो मनुष्यो के पीछे खडे इस दरिद्र नारायण जन्मान्ध को देखा तो उसकी दयनीय

---

१०. विपाक सूत्र १।१

दशा पर उनका हृदय पसीज गया । गौतम ने भगवान से पूछा—[९१] 'भन्ते ! इस नगर मे ऐसा जन्म अन्व एव जन्म अन्वरूप अन्य भी कोई है ?"

भगवान ने कहा—"हाँ, गौतम इससे भी अविक वीभत्स आकारवाला जन्म-अन्वरूप एक पुरुष इस नगर मे है ?"

गौतम की जिज्ञासा और प्रवल हुई । पूछा—"भन्ते ! वह जन्मान्ध रूप पुरुष कौन है ?"

भगवान—"गौतम ! इस नगर के नायकविजय क्षत्रिय की पत्नी मृगादेवी का आत्मज 'मृगापुत्र' नामक एक वालक है, जो जन्म से अन्धा है, उसके न हाथ पांव है, न कान-नाक आदि अगोपाग । केवल अगो का आकार मात्र है । उसे मृगा-देवी अपने भूमिगृह मे रख कर उचित पालन-पोषण कर रही है ।"

गौतम की जिज्ञासा प्रवल हो उठी ! भगवान की आज्ञा लेकर वे मृगापुत्र को देखने के लिए मृगादेवी के महल की ओर चले । मृगादेवी ने प्रसन्नता पूर्वक गौतम-स्वामी का स्वागत किया और पूछा—"भन्ते ! आप ने यहाँ पधारने का कष्ट किस-लिए किया, आज्ञा दीजिए—**'सदिस तु ण देवाणुप्पिया ! किमागमणपयोयणं ?'**

गौतम ने वताया "देवी ! मैं तुम्हारे पुत्र को देखने के लिए यहाँ आया हूँ ।"

मृगादेवी ने मृगापुत्र के पीछे जन्मे हुए अपने चार पुत्रो को अलकृत विभूषित किया, और गौतम स्वामी के चरणो मे गिराकर कहा—'भगवन् ! ये मेरे पुत्र हैं, इन्हे देखिए !"

"देवानुप्रिया ! मैं इन पुत्रो को देखने के लिए नही, किन्तु तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को, जो जन्म से नेत्रहीन है, जिसे तुम भूमिगृह मे छुपा के रखती हो, उसे देखने के लिए यहाँ आया हूँ ।"

मृगादेवी ने आश्चर्य पूर्वक गौतम से पूछा—"भन्ते ! ऐसा ज्ञानी एव तपस्वी कौन है जिसने मेरे इस अत्यन्त प्रच्छन्न वृतान्त को आपके समक्ष सूचित किया है ? जिस कारण आप यहाँ आये हैं ?"

गौतम स्वामी ने अत्यन्त सरल भाव से कहा—"देवानु प्रिये ! मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर ने मुझे यह सव वृत्तान्त वताया है ।"

---

९१. अत्थिण भन्ते ! केई पुरिसे जाति अन्वे, जाय अंव रुवे ?

—विपाकसूत्र १।१

मृगादेवी गौतम के साथ वार्तालाप कर ही रही थी कि मृगापुत्र के भोजन का समय हो गया। उसने कहा—"भते ! आप ठहरिये, अभी आप उसे देख सकेंगे।" पश्चात् मृगादेवी ने अपने वस्त्र बदले, एक लकडी की गाडी मे भोजन सामग्री रखी और गौतम स्वामी को अपने पीछे-पीछे चले आने का सकेत देकर उस भूमिगृह की ओर आई। भूमिगृह के द्वार पर पहुँच कर उसने वस्त्र से अपना नाक-मुँह ढँका, गौतम स्वामी से भी ढँकने को कहा। मृगादेवी ने द्वार की ओर पीठ करके भूमिगृह का द्वार खोला। उसमे से भयंकर वदवू आ रही थी, फिर भी गौतम ने उस बालक को देखा। अग के नाम पर सिर्फ एक मुँह था। जिस मुख से खा रहा था उसी से वापस निगल रहा था और फिर उसी वमन को चाट रहा था। उस वीभत्स एव दयनीय रूप को देखकर गौतम के रोम-रोम उत्कटित हो गये। गौतम मृगादेवी को सूचित कर पुन अपने स्थान पर आये और प्रभु से पूछा—'भते ! आपने जैसा बताया वैसा ही वह जन्मान्ध रूप पुरुष है ! उसने पूर्व जन्म मे किस प्रकार के दुष्कर्म, घोर कर्म किये होगे जिनके फलस्वरूप वह इस प्रकार अत्यन्त कष्टमय, दुर्गन्धपूर्ण बीभत्स जीवन जी रहा है ?'

भगवान ने गौतम के प्रश्न पर उसके अतीत जीवन के दुष्कर्मो की लोम-हर्षक कहानी सुनाई, जिसका विस्तृत वर्णन विपाक सूत्र मे किया गया है।

सम्पूर्ण विपाक सूत्र गौतम की इसी प्रकार की जिज्ञासाओ का एक उत्तर है। गौतम अगले अध्यायो मे भी वधभूमिका ले जाते हुए अपराधियो को देखते हैं और उसके भूत-भावी जीवन का लेखा जोखा भगवान से आकर पूछते हैं।

ऐसा लगता है कि गौतम के मन मे जिज्ञासाओ का अम्वार लगा है, जव कभी किसी प्रसग से वे कुरेदी जाती है तो वे प्रश्न रूप मे भगवान के समक्ष अवतरित हो जाती हैं। जव वे कोई भी नई वात देखते हैं तो उसके मूल तक जाने का प्रयत्न करते हैं, उसके कारणो का विश्लेपण सुनना चाहते हैं और चाहते हैं उसके भूतकालीन निमित्त-उपादान का लेखा-जोखा, एव भावी परिणामो की अवगति।

भगवती सूत्र मे एक प्रसग है। भगवान महावीर एकवार ब्राह्मण कुण्ड ग्राम मे पधारे। वहाँ ऋषभदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था जो धनाढ्य होने के साथ-साथ वहुत वडा विद्वान् भी था। वह चारो वेद, षडंग, पुराण आदि का पारगत था, और

निर्ग्रन्थ धर्म के रहस्यो को भली प्रकार जानने वाला श्रमणोपासक था।[९२] ऋषभदत्त की पत्नी थी देवानन्दा।

भगवान महावीर के आगमन की सूचना पाकर ऋषभदत्त एव देवानन्दा उनके दर्शनो के लिए गये। देवानन्दा ने भगवान महावीर का अतिशय सम्पन्न दिव्य रूप देखा तो उसके मन मे वात्सल्य की धारा उमड पडी। वह रोमाचित हो गई और पुत्र स्नेह का भाव प्रबल हो उठा। उनकी दोनो आंखो से आनन्द के आसू बरसने लग गये और भावावेग मे उनकी कचुकी के बन्धन शिथिल होकर, स्तनो से दूध की धारा बहने लग गई।

गौतम स्वामी ने जब देवानन्दा को इस प्रकार रोमाचित होकर स्तनो से दूध की धारा बहाते देखा तो बडा आश्चर्य हुआ। भगवान महावीर से पूछा—"भंते! देवानन्दा इस प्रकार क्यो, किस कारण रोमाचित हो रही है?"

भगवान ने कहा—"गौतम! देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है, मै इस देवानन्दा ब्राह्मणी का पुत्र हूं। इसी पुत्र-स्नेह के कारण आनन्द का वेग उमड पडा, वह उसे रोक नही पाई, और इस प्रकार रोमाचित हो उठी।"[९३]

गौतम के मन मे एक प्रश्न के समाधान के साथ ही दूसरा प्रश्न उठा—"भंते! आपकी माता तो त्रिशला क्षत्रियाणी है—ऐसा सर्वविदित है। फिर देवानन्दा आपकी माता किस प्रकार हो सकती है?"

गौतम के प्रश्न पर भगवान ने गर्भपरिवर्तन की घटना की चर्चा की, जिसे सुनकर ऋषभदत्त-देवानन्दा सहित सम्पूर्ण परिषद् को आश्चर्य हुआ।[९४]

---

९२. कल्पसूत्र एव भगवती आदि सूत्रो के आधार पर ज्ञात होता है कि ऋषभदत्त पहले तो वैदिक धर्म का अनुयायी ही था, पर बाद मे 'श्रावक' बन गया। भगवान महावीर पहले देवानन्दा की कुक्षी मे आये थे। इस दृष्टि से देवानन्दा को माता एव ऋषभदत्त को पिता कहा गया है।

९३. गोयमा! देवाणंदा माहणी मम अम्मगा, अह ण देवाणदाए माहणीए अत्तए तेण पुव्व पुत्त सिणेह रागेणं आगय—पण्हया जाव समूसविय रोमकूवा —भगवती श० ९। उ० ६

९४. विशेष विवरण के लिए देखे (क) त्रिषष्टिशलाका० १०।८।१०-१८ (ख) तीर्थंकर महावीर भा० १ पृ० १०३ (ग) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) पत्र २५९-२

इस प्रकार आगम साहित्य मे गौतम की जिज्ञासाओ की अनेक घटनाएँ विभिन्न प्रसगो के साथ जुडी हुई हैं। गौतम के प्रश्नो की उत्थानिका मे भी किसी न किसी सूक्ष्म घटना का उल्लेख आता है। गौतम देखते है, सुनते हैं और फिर तत्काल भगवान के पास जाकर उसकी जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।[९५]

भारतीय वाङ्मय मे गौतम की जोडी का जिज्ञासा प्रधान व्यक्तित्व मिलना कठिन ही नही, प्राय असम्भव है। गौतम के प्रश्नो और जिज्ञासाओ ने तीर्थंकर महावीर के चिन्तन एव दर्शन को वाङ्मय का रूप दिया है। गम्भीर से गम्भीर एवं सरल से सरल सभी प्रकार के प्रश्न गौतम ने उपस्थित किए हैं, उनके मूल तक पहुँचे हैं और उन पर भगवान महावीर के समीचीन समाधान प्राप्त कर जैन साहित्य के अध्येता के लिए एक व्यवस्थित मार्ग प्रस्तुत किया है। जैनसाहित्य गौतम का चिर-ऋणी रहेगा, वल्कि गौतम के नाम से वह सदा प्रकाशमान भी रहेगा। जिस प्रकार कि सस्कृत साहित्य कालिदास के नाम से, हिन्दी साहित्य तुलसी एव सूर के नाम से, अंग्रेजी साहित्य शेक्सपियर के नाम से और रूसी साहित्य गोर्की के नाम से आज भी अपने को गौरवान्वित समभते हैं, वही नही, वल्कि उससे भी अधिक गौरव जैन श्रुत साहित्य को गणधर इन्द्रभूति गौतम के नाम से हैं।

वौद्ध पिटको मे अनेक स्थानो पर आनन्द द्वारा प्रश्न उपस्थित किए गए है और तथागत ने उनका समाधान किया है। पर परिमाण एव विषय वस्तु की दृष्टि से वे वहुत ही अल्प है, गौतम-महावीर के प्रश्नो की तुलना मे बहुत ही नगण्य! अन्य ग्रन्थो मे तो इस प्रकार की शैली का दर्शन भी अत्यल्प मात्रा मे होता है।

गौतम का जीवन दर्शन

●

गणधर गौतम के छद्मस्थ जीवन की एतद् प्रकार की सैकडो घटनाएँ जैन आगमो मे संगुम्फित हुई हैं—जिनमे उनके वहुमुखी सार्वभौमिक व्यक्तित्व के अनेक आन्तरिक गुण उजागर हुए हैं। उनके जीवन मे ज्ञान और क्रिया के दोनो पक्ष सुदृढ एव सवल रहे हैं, दोनो की समुज्ज्वलता चरम कोटि की है। ज्ञान के साथ विनम्रता,

---

९५. देखिए पुद्गल परिव्राजक की चर्चा, तुगिया नगरी के लोगो का प्रश्नोत्तर आदि—भगवती ११।१२, २।५

सत्योन्मुखी जिज्ञासा, नया ग्रहण करने की उत्कट अभिलाषा है तो क्रिया के साथ उदग्रता, सरलता निरहकारिता, भक्ति एवं हृदय की उदारता का भी अद्भुत सम्मिश्रण उनके जीवन दर्शन मे प्राप्त होता है।

गौतम की सराग-उपासना

●

गौतम ने पचास वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की।[९६] जिस दिन भगवान महावीर को कैवल्य हुआ उसके दूसरे दिन ही उनकी प्रव्रज्या हुई और भगवान महावीर की विद्यमानता मे उन्हे केवल ज्ञान नही हुआ। यद्यपि उनकी साधना परम उज्ज्वल एव उत्कट थी, उनकी क्रिया श्रमणसघ के लिए अनुकरणीय एव आदर्श बताई गई हैं। धन्य अणगार जैसे तपस्वियो के वर्णन मे भी गौतम स्वामी का उदाहरण दिया गया है।[९७] उनके द्वारा दीक्षित सैकडो हजारो शिष्य केवली हो गए।[९८] फिर भी गौतम स्वामी को तीस वर्ष तक केवल ज्ञान नही हुआ, यह एक आश्चर्य की बात है। इसके कारणो की खोज मे सम्पूर्ण आगम वाङ्मय सिर्फ एक ही उत्तर देता है और वह है गौतम का भगवान महावीर के प्रति स्नेह बन्धन।[९९] इतने बडे साधक, जो शरीर रहते हुए भी शरीरमुक्त स्थिति का अनुभव करते रहे, जिनके लिए स्थान-स्थान पर 'उच्छूढ शरीरे'[१००] विशेषणो का प्रयोग हुआ, वे अध्यात्म की उच्चतम भूमिका पर पहुँचे हुए अध्यात्म योगी भगवान महावीर के प्रति स्नेह बन्धन के कारण वीतराग स्थिति नही प्राप्त कर सके यह आश्चर्यकारी बात होते हुए भी जैन दृष्टि के 'समत्वयोग' की निष्पक्ष उद्घोषणा भी है। जो साधक अपने देह की ममता से मुक्त है, किन्तु अपने भगवान के प्रति यदि अनुराग रखता है, तो भले ही यह उसका भगवद् अनुराग हो, किन्तु आखिर वह भी बन्धन है, भगवदनुराग भी उसकी वीतरागताका बाधक है, क्यो न हो, जिस धर्म का आराध्य भगवान स्वय वीतराग है, वह अपने भक्तो को भी सराग-उपासना से भक्ति का वरदान कैसे दे सकता है ? जैन

---

९६. आवश्यक नियुक्ति
९७. औपपातिक सूत्र (धन्य अणगार वर्णन)
९८. (क) कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी पृ० १६९-१७१
(ख) कल्पसूत्र बालावबोध पृ० २६०
९९. भगवतीसूत्र १४।७
१०० भगवती सूत्र १।१. उवासग दशा १।, औपपातिकसूत्र

दर्शन को आध्यात्मिक दृष्टि ने 'राग' को स्पष्टत. ही वन्धन स्वीकार किया है।[१०१] फिर भले ही वह प्रशस्त (शुभ) हो या अप्रशस्त। हा, प्रशस्त राग, राग की ऊर्ध्वदशा है, वह भले ही जीवन मे काम्य न हो, पर अप्रशस्त की भाति त्याज्य भी नही है, अत उसे पुण्य रूप अवश्य माना गया है।[१०२] किन्तु आत्म साधक के लिए वह पुण्य भी वन्धन है, चाहे सोने की वेडी के रूप मे ही हो, अत वह त्याज ही है।[१०३]

गौतम के अन्त करण मे प्रभु महावीर के प्रति जन्म-जन्मान्तर-संश्लिष्ट-अनुराग था। वही उन्हे वीतराग वनने से रोक रहा था। भगवती सूत्र[१०४] मे स्वय भगवान ने उस अनुराग का वर्णन किया है और गौतम को सम्वोधित करके कहा है—'**वुच्छिंदसिणेहमप्पणो**—[१०५] अपने स्नेह वन्धन को यो तोड डाल, जैसे शरद ऋतु के कमल दल को हाथ के झटके से तोड़ दिया जाता है।

प्रभु का उपदेश, उद्वोधन प्राप्त करके भी गौतम इस सूक्ष्म राग को नही तोड सके और इसी कारण वीतराग-दशा प्राप्त नही कर सके।

पावा में अंतिम वर्षावास

●

भगवान महावीर ने अपना अतिम वर्षावास पावा[१०६] (अपापापुरी) मे किया। वहाँ हस्तिपाल राजा था। उसकी रज्जुकशाला (लेख शाला) मे भगवान स्थिरवास रहे।

- कार्तिक अमावस्या का दिन निकट आया, अतिम देशना के लिए समवसरण की विशेष रचना की गई। शक्र ने खडे होकर भगवान की स्तुति की, फिर हस्तिपाल

---

१०१. (क) दुविहे वन्वे—पेज्जवन्वे चेव दोसवन्वे चेव—स्थानाग—२।४
(ख) रागो य दोसो वि य कम्मवीयं—उत्त० ३२।७
(ग) समयसार २६५

१०२ पचास्तिकाय १३५

१०३. वही, गा० १४२,

१०४. शतक १४।७

१०५. उत्तराध्ययन १०।२८

१०६. 'पावा' के सम्वन्ध मे विशेष जानकारी के लिए देखें-आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन (मुनि नगराज जी डी० लिट्०) पृ० ५४

राजा ने भगवान की स्तुति की। भगवान ने सोलह प्रहर की देशना दी।[१०७] उस दिन भगवान छट्ठ भक्त से उपोसित थे।[१०८] देशना के पश्चात् अनेक प्रकार की प्रश्न चर्चाएँ हुई। राजा पुण्यपाल ने अपने आठ स्वप्नो का फल पूछा, उत्तर सुनकर वह संसार से विरक्त हुआ।[१०९] फिर गणधर गौतम ने पाँचवे आरे के सम्बन्ध मे प्रश्न किये— "भते ! आपके परिनिर्वाण के पश्चात् पाँचवा आरा कब लगेगा ?"

भगवान ने उत्तर दिया—"तीन वर्ष साढ़े आठ मास बीतने पर।" आगामी उत्सर्पिणी मे होने वाले तीर्थंकर, वासुदेव, बलदेव, कुलकर आदि का भी सामान्य परिचय गौतम के उत्तर मे भगवान ने दिया। तदनन्तर गणधर सुधर्मा ने प्रश्न किया और उनका भी उत्तर भगवान ने दिया।

देवराज इन्द्र ने भगवान के परिनिर्वाण का अंतिम समय निकट आया देखकर अश्रुपूरित नयनो से प्रभु से प्रार्थना की—"भगवन् ! आपके जन्मनक्षत्र (हस्तोत्तरा) मे भस्मग्रह सक्रमण कर रहा है, उसका दुष्प्रभाव दो हजार वर्ष तक आपके धर्मसंघ पर रहेगा, अत आप कुछ काल के लिए अपने आयुष्य की वृद्धि करें।"

देवराज के उत्तर मे भगवान ने कहा—"शक्र। आयुष्य कभी बढाया नही जा सकता।"[११०]

गौतम को कैवल्य

●

उसीदिन भगवान ने देखा—आज मेरा निर्वाण होने वाला है, मुझ पर गौतम का अत्यत अनुराग है, इसी अनुराग के कारण मृत्यु के समय वह अधिक शोक विह्वल न हो, और दूर रहकर अनुराग के बंधन को तोड सके अत देवशर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए अन्यत्र भेज दिया। "आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीया" गुरूजनो की आज्ञा शिष्य को अविचारणीय एवं अतर्कणीय होती है। गौतम ने प्रभु का आदेश शिरोधार्य किया और देवशर्मा को प्रतिबोध देने चल पड़े।

---

१०७. सौभाग्य पंचम्यादि पर्व कथा संग्रह पत्र १००

१०८. कल्पसूत्र सूत्र १४७, महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) पत्र ९९

१०९. विस्तार के लिए देखिए—तीर्थंकर महावीर भा० २ पृ० २९५ (विजयेन्द्र सूरि)

११०. स्वाम्यूचे शक्र ! केनापि नायु सन्धीयते क्वचित्।

—कल्पसूत्र, कल्पार्थ प्रबोधिनी पत्र १२१

रात्रि में भगवान का परिनिर्वाण हो गया। गौतम स्वामी को जब इसकी खबर लगी तो वे एकदम मोह-विह्वल हो गये। उनके हृदय पर वज्राघात-सा लगा। वे मोहदशा में-"भते ! भते !" पुकार उठे। भगवान को उलाहना देते हुए कहने लगे "प्रभु ! आपने यह क्या धोखा किया ? जीवन भर छाया की भाँति मैं आपकी सेवा में रहा, और आज अपने अतिम समय में आपने मुझे दूर कर दिया ? क्या मैं वालक की तरह आपका अचल पकड कर मोक्ष जाने से रोकता था ? क्या मेरे स्नेह में कोई कृत्रिमता थी ? यदि मैं भी आपके साथ चलता तो सिद्ध शिला पर कौन सी सकीर्णता हो जाती ? क्या शिष्य भी गुरू के लिए भार स्वरूप बन जाता ? प्रभो ! अव मैं किसके चरणो मे प्रणाम करूँगा ? कौन मेरे मन के प्रश्नो का समाधान करेगा ? किसे मैं भन्ते ! कहूँगा, और कौन मुझे—'गोयमा' कह कर पुकारेगा ?"[१११]

कुछ क्षण इस प्रकार की भाव विह्वलता मे वहने के पश्चात् इन्द्रभूति ने अपने आपको सभाला। उस तत्वज्ञानी महान् साधक ने अपने मन के घोडे को घेरा। और विचार करने लगे—"अरे ! यह मेरा मोह कैसा ? वीतराग के साथ स्नेह कैसा ? भगवान तो वीतराग है, मैं व्यर्थ ही उनके राग मे फँसा हुआ हूँ। वे तो राग मुक्त होकर मोक्ष पधार गये ! अव मुझे भी राग छोडना चाहिए ! मुझे अपनी आत्मा का ध्यान करना चाहिए, वही एक मेरा परम साथी है, वाकी सव बधन हैं, पर हैं।" इस प्रकार आत्म-चिंतन की उच्चतम दशा पर आरोहण करते हुए इन्द्रभूति ने अपने राग को क्षीण किया और उसी रात्रि के उत्तरार्ध मे केवल ज्ञान प्राप्त किया।[११२]

---

१११. भगवान महावीर के निर्वाण पर जिस प्रकार की मोहदशा गौतम को प्राप्त हुई, लगभग उसी प्रकार की मोहदशा एव रुदन आदि की स्थिति तथागत के निर्वाण पर आनन्द की हुई। आनन्द ने जव तथागत का निर्वाण निकट आया सुना तो विहार मे जाकर खूटी पकड कर रोने लगे—"हाय ! मेरे शास्ता का परिनिर्वाण हो रहा है !" जव वुद्ध को भिक्षुओ से ज्ञात हुआ कि आनन्द रुदन कर रहा है तो उन्होने वुला कर कहा—"आनन्द ! शोक मत करो ! रुदन मत करो ! सभी प्रियो का वियोग अवश्यभावी है। आनन्द ! तूने चिरकाल तक तथागत की सेवा की है, तू कृतपुण्य है। निर्वाण साधन मे लग ! शीघ्र अनाश्रव हो !"

—दीघनिकाय (आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, पृ० ३८७)

११२. कल्पसूत्र, कल्पार्थवोधिनी, पत्र ११४

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् सघ के नेता का प्रश्न आया । गणधर गौतम भगवान महावीर के संघ मे सबसे ज्येष्ठ थे । ज्ञान एव तप साधना मे भी अद्वितीय थे । वरीयता और ज्येष्ठता की दृष्टि से सघ का नेतृत्व गौतम के हाथो मे आता, किंतु गौतम उसी रात्रि को सर्वज्ञ हो गए थे, अत प्रश्न यह आया कि सर्वज्ञ की परम्परा चलाने के लिए, उनकी वाणी को उन्ही के नाम से परम्परित करने के लिए सर्वज्ञ का उत्तराधिकारी छद्मस्थ होना चाहिए न कि सर्वज्ञ ! इस दृष्टि से भगवान महावीर के उत्तराधिकारी गणधर सुधर्मा हुए ।

गौतम केवल ज्ञान प्राप्त करके बारह वर्ष तक पृथ्वी पर विचरते रहे, उपदेश करते रहे । गौतम के द्वादशवर्षीय सर्वज्ञ जीवन का विशेष विवरण आज उपलब्ध नही हैं । केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि वे अन्तिम समय मे राजगृह मे एक मास का अनशन करके सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए ।

○ ○

खण्ड : ५

परिसंवाद [प्रश्न एवं संवाद]

दर्शन का मूल जिज्ञासा
गौतम की प्रश्न शैली
प्रश्नो का वर्गीकरण

१—अध्यात्म विषयक प्रश्न

सामायिक मे भाड अभाड
आत्मा का गुरुत्व लघुत्व
लघुता प्रशस्त है ?
कषाय का आधार क्या है ?
उपासना का फल ?
ज्ञान और क्रिया ?
शील और श्रुत ?
दीर्घायुष्य का कारण ?
दु खी-सुखी क्यो ?
सिद्ध स्वरूप ?
श्रमण केशीकुमार और गौतम
उदक पेढाल पुत्र और गौतम
विकास और ह्रास का कारण
उत्थान और पतन का रहस्य

२—कर्मफल विषयक प्रश्न

प्रदेशी राजा
मृगापुत्र
सुबाहु कुमार

३—लोक विषयक प्रश्न

लोक एव जीव ●
परमाणु · शाश्वत अशाश्वत ●
अस्तित्व-नास्तित्व ●
देवासुर संग्राम ●
देवासुर विरोध का कारण ●
देवो के भेद ●
क्या देवता अलोक में हाथ फैला सकता है ? ●
गुड मे कितने रस ? ●
माता पिता के अग ●

४—स्फुट विषयक प्रश्न

उन्माद ●
उपधि ●
राजगृह क्या है ? ●
लवण समुद्र का पानी ●
मेघ स्त्री है या पानी ? ●
घोडे का शब्द ●
जृम्भक देव ●
तीर्थ और तीर्थंकर ●
दर्शन कितने ? ●

परिसंवाद

दर्शन का मूल जिज्ञासा

•

गणधर गौतम की उदग्र जिज्ञासा वृत्ति का एक परिचय पिछले पृष्ठो पर दिया जा चुका है और उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैन श्रुत साहित्य के निर्माण मे अधिकाश एव महत्वपूर्ण योग गौतम के इन्ही प्रश्नो का है। हो सकता है उत्तरकाल मे यह ग्रन्थ-प्रणयन की एक शैली वन गई हो, जिसके प्रारम्भ मे गौतम की जिज्ञासा उपस्थित करके उस पर भगवान द्वारा उत्तर दिलाया जाय। पर किसी भी शैली का निर्माण तभी होता है जव उसकी परम्परा मे कोई स्थायीप्रभाव एव असामान्य आकर्पण रहा हो, नई शैली का जन्म अपने आप मे किसी परम्परा एव धारणा के आकर्पक प्रभाव का इतिहास होता है। गौतम के प्रश्न एवं उत्तर की शैली वस्तुत एक रोचक एव हृदयग्राही शैली रही है। आगमो के ऐतिहासिक अवलोकन से यह भी तो स्वत सिद्ध है कि वहुत से सवाद गौतम और महावीर की जीवन घटनाओ के साथ जुडे हैं, अत उनकी ऐतिहासिकता मे भी सशय नही किया जा सकता। फिर आगमो मे गौतम की मन स्थिति को जताने वाली एक शव्दावली बार-बार आती है जाय सड्ढे, जायससए, जायकोउहल्ले।"[1] गौतम के मन मे अमुक तथ्य को

---

१. (क) भगवती १।१
(ख) औपपातिक
(ग) उवासग दशा १
(घ) विपाक १ आदि

महावीर विराजमान हैं वहाँ आते हैं, उन्हे विनयपूर्वक वन्दन करते हैं, प्रभु के ज्ञान की स्तुति करते है और फिर अपनी शका प्रस्तुत करते हुए पूछते हैं—"**कहमेयं भते**—कथमेत् भदन्त—भगवन! यह बात कैसे है? कभी-कभी वे उत्तर की गहराई मे जाकर पुन प्रति प्रश्न भी करते हैं—**केणट्ठेणं भंते**। ऐसा किस लिए कहा जाता है? वे हेतु तक जाकर तर्क शैली से उसका समाधान पाना चाहते हैं।[10]

गौतम के प्रश्न की यह शैली तर्क पूर्ण एव वैज्ञानिक प्रतीत होती है। विज्ञान भी 'कथम्'—हाउ (How) और 'कस्मात्' 'केन'—ह्वाई (क्यो, किस कारण) (Why) इन्ही दो तर्कसूत्रों को पकड कर वस्तुस्थिति की गहराई मे उतरता है, और अन्वीक्षण-परीक्षण करके रहस्यो का ज्ञान प्राप्त करता है। गौतम भी प्राय इन्ही दो सूत्रो के आधार पर अपनी जिज्ञासाओ को प्रस्तुत करते हैं।

गौतम की जिज्ञासा मे एक विशेषता और है। वे केवल प्रश्न के लिए प्रश्न नही करते हैं, किन्तु समाधान के लिए प्रश्न करते हैं। उनकी जिज्ञासा मे सत्य की बुभुक्षा है, उनके सशय मे समाधान की गूंज है, उनके कौतुहल मे विश्व वैचित्र्य को समझने की तडफ है।

सत्योन्मुखता उनके प्रत्येक शब्द से जैसे टपकती है। यही कारण है कि भगवान महावीर अपना अमूल्य समय देकर भी गौतम के प्रश्नो का समाधान करते है। और गौतम भी अपनी जिज्ञासा का समाधान पाकर कृत-कृत्य होकर भगवान के चरणो मे पुनः विनयपूर्वक कह उठते हैं—'**सेव भन्ते! सेव भन्ते! तहमेयं भन्ते!** प्रभु! जैसा आपने कहा, वह ठीक है, वह सत्य है, मैं उस पर श्रद्धा एव विश्वास करता हूं।" प्रभु के उत्तर पर श्रद्धा की यह अनुगूंज वास्तव मे ही प्रश्नोत्तर की एक आदर्श पद्धति है। इससे न केवल प्रश्नकर्ता के समाधान की स्वीकृति होती है, किन्तु उत्तरदाता के प्रति कृतज्ञता एव श्रद्धा का भाव भी व्यक्त होता है, जो कि अत्यन्त आवश्यक है।

प्रश्नो का वर्गीकरण

●

गौतम के प्रश्न, चर्चा एव सवादो का विवरण इतना विस्तृत है कि उसका वर्गीकरण करना बहुत ही कठिन है। भगवती, औपपातिक, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति,

---

१०. गौतम का कुतूहल कभी-कभी उसी रूप मे व्यक्त होता है जैसा पूर्वोक्त ऋग्वेद एव यजुर्वेद के ऋषियो के मन मे उठता है।

विपाक, रायपसेणी आदि आगमो मे इतने विविध विषयक प्रश्न हैं कि उनकी विस्तृत सूची तैयार की जाये तो संभवत. एक स्वतंत्र ग्रन्थ का निर्माण हो जाये। मेरे मन मे यह भी परिकल्पना है कि आगमो मे जहाँ जहाँ भी गौतम के नाम से प्रश्नोत्तर आये हैं उनकी एक सूची और साथ ही ससदर्भ एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार किया जाये। इस लघु पुस्तक मे यह सभव नही है। फिर भी सक्षेप मे गौतम के प्रश्नो को चार वर्गों मे वांटा जा सकता है—

१. अध्यात्म विषयक
२. कर्म-फल विपयक
३. लोक विपयक
४. स्फुट विपयक

प्रथम वर्ग मे वे प्रश्न गिने जा सकते हैं जिनमे गौतम ने भगवान से आत्मा[11] उसकी स्थिति, शाश्वत-अशाश्वत[12] जीव, सामायिक[13] कर्म, कषाय,[14] लेश्या[15] ज्ञान का फल[16], मोक्ष, सिद्ध स्वरूप[17] आदि विषयो पर प्रश्न किये हैं। इनमे वे सवाद भी सम्मिलित किये जा सकते हैं जो गौतम ने अपने अन्य विशिष्ट जिज्ञासुओ एव साधको के साथ किये है, जैसे उदक पेढाल[18], केशीकुमार श्रमण[19] आदि।

द्वितीय वर्ग मे उन प्रश्नो का समावेश किया जा सकता है, जो किसी व्यक्ति विशेष को सुखी देखकर उसके पूर्व जन्मोपार्जित शुभ कार्यों के विषय मे पूछना। जैसे—सुवाहु कुमार, मृगापुत्र[20] आदि। तथा किसी को ऋद्धि समृद्धि देखकर उसके पूर्व जीवन के विपय मे पूछना, जैसे—सूर्याभदेव के पूर्व जीव प्रदेशी राजा का वर्णन।[21]

---

११. ज्ञाता सूत्र
१२. भगवती
१३. भगवती
१४. प्रज्ञापना
१५. प्रज्ञापना
१६. भगवती
१७. औपपातिक (सिद्ध वर्णन)
१८. सूत्र कृताग
१९. उत्तराध्ययन
२०. विपाक सूत्र
२१. रायपसेणी सूत्र

जानने की श्रद्धा—इच्छा पैदा हुई, सशय हुआ, कौतुहल हुआ, और वे उस ओर आगे वढ़े। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि गौतम की वृत्ति मे मूलघटक वे ही तत्व थे जो सपूर्ण दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति की कहानी के मूल घटक रहे हैं।

दर्शन शास्त्र के इतिहास मे तीन दर्शन मुख्य माने गये हैं। यूनानी दर्शन, पश्चिमी दर्शन एव भारतीय दर्शन। यूनानी दर्शन का प्रवर्तक ओरिस्टोटल माना जाता है, उसका कथन है—'दर्शन का जन्म आश्चर्य से हुआ।'[२] इसी वात को प्लेटो ने उद्धृत किया है। पश्चिम के प्रमुख दार्शनिक डेकार्ट, काट, हेगल आदि ने दर्शन शास्त्र का उद्भावक तत्व 'सशय' माना है।[३] भारतीय दर्शन का जन्म 'जिज्ञासा' से हुआ यह अनेक दर्शनो के प्रथम दर्शन सूत्रो स ही स्पष्ट हो जाता है।[४] उपनिषदो मे तो इस प्रकार की अनेक कथाएँ सग्रहित हैं जिनके मूल मे यही जिज्ञासा तत्व मुखरित हो रहा है। नारद सनत्कुमार के पास आकर यही प्रार्थना करते हैं—"अधीहि भगवन्!"[५] मुझे सिखाइये, आत्मा क्या है यह वताइए। कठोपनिपद् का यम एव नचिकेता का सवाद तो दर्शन शास्त्र का महत्वपूर्ण सवाद माना जाता है। वालक नचिकेता यम के द्वार पर पहुँच कर जव कहता है—"जिसके विषय मे सव मनुष्य विचिकित्सा कर रहे हैं वह तत्व क्या है ? मुझे वताइये ?" यम उसे ऐश्वर्य सुख, भोग का प्रलोभन देकर इस प्रश्न को टालना चाहता है, पर अटल जिज्ञासु वालक नचिकेता दृढता के साथ कहता है—"मुझे यह धन वैभव कुछ नही चाहिए, मुझे तो मेरे प्रश्न का समाधान (वर जो मागा है) चाहिए, वस मुझे यही यथेष्ट है।"[६]

दर्शन शास्त्र के इतिहास के लेखको ने अर्हत् महावीर एव तथागत बुद्ध की प्रव्रज्या एव कठोर साधना का मूल भी इसी आत्मजिज्ञासा मे देखा है। के अहमंसि ?

---

२. फिलॉसफी विगिस इन वडर (Philosophy begins in wander)
३. दर्शन का प्रयोजन पृष्ठ २९ (डा० भगवानदास)
४. (क) अथातो धर्मजिज्ञासा—वैशेपिक दर्शन १
(ख) दु ख त्रयाभिघाताज् जिज्ञासा—साख्यकारिका १ (ईश्वरकृष्ण)
(ग) अथातो धर्म जिज्ञासा—मीमासा सूत्र १ (जैमिनी)
(घ) अथातो ब्रह्म जिज्ञासा—ब्रह्मसूत्र १।१
५. छादोग्य उपनिपद अ० ७
६. वरस्तु मे वरणीय एव—कठोपनिपद्।

के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि ?[7] मैं कौन था, मेरा क्या स्वरूप है, यहाँ से आगे कहाँ जाऊँगा—ये विकट प्रश्न साधक को आत्मशोध की ओर उन्मुख करते हैं और जब तक वह इनका समाधान नही पा लेता, तब तक उसे चैन नही पडता। तथागत बुद्ध तो स्पष्ट प्रतिज्ञा करते हैं कि "जब तक मैं जन्म मरण के किनारे का पता नही पा लूँगा तब तक कपिलवस्तु मे प्रवेश नही करूँगा।[8]

इस प्रकार आश्चर्य, जिज्ञासा, सशय, कुतूहल ये सब मनुष्य को दर्शन की ओर उन्मुख करते रहे हैं। ठेठ वैदिक काल[9] से लेकर पश्चिमी दर्शन के उद्भव तक यही 'इटेलेक्चुअल क्युरियासिटी' (Intellectual curiosity) 'बौद्धिक कौतुहल' मनुष्य को ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र मे निरंतर आगे से आगे बढाता आया है।

गौतम की प्रश्न शैली

●

गणधर गौतम के मन मे 'बौद्धिक कुतूहल' बहुत उत्कट रूप मे प्रदर्शित होता है, वह सिर्फ आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध मे ही नही, किन्तु दृश्य जगत् के प्रत्येक पदार्थ के सम्बन्ध मे सचेतन है, कोई भी घटना, विषय या प्रसग जब उनके सामने आता है तो वे उस विषय मे जानने की इच्छा करते हैं, उसके विविध पक्षो पर सशयात्मक चिंतन, अवलोकन करते हैं, उसकी विविधता एव विचित्रता के सबध मे मन मे कुतूहल होता है और उस 'श्रद्धा' सशय एव कुतूहल से प्रेरित होकर अपने धर्मोपदेष्टा प्रभु के चरणो मे उपस्थित होकर विनय पूर्वक प्रश्न करते है।

गौतम के प्रश्नोत्थान की शैली भी बडी सुन्दर एव विनयपूर्ण है। उनके मन मे जब कोई सशय या जिज्ञासा उपस्थित होती है तो वे चलकर जहाँ भगवान

---

७. आचाराग १।१।१।१

८. जनन-मरणयोरदृष्टपार न पुनरहं कपिलाह्वय प्रवेष्टा।

—बुद्धचरित (अश्वघोष)

९. ऋगवेद कालीन ऋषि रात्रि मे तारो को देखकर कहता है—ये तारे रात्रि मे दीख पडते हैं, वे दिन मे कहाँ चले जाते हैं, यह मेरी समझ के परे है (ऋगवेद म १ सू० २२) इस जगत का आरम्भ किसने किया ? वह कौन था ? कैसा था ? आदि प्रश्न भी उसे विकल करते प्रतीत होते हैं (यजुर्वेद अ० २३) देखे दर्शन का प्रयोजन पृष्ठ २६

१

अध्यात्म विषयक प्रश्न

सामायिक में भांड-अभांड

●

भगवान महावीर एक बार राजगृह मे पधारे। वहाँ गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—"भन्ते ! सामायिक व्रत अगीकार करके बैठे हुए श्रावक के भडोपकरण कोई पुरुष ले जावे और फिर सामायिक पूर्ण होने पर वह श्रावक उन भडोपकरण की खोज करे तो क्या वह अपने भडोपकरण की खोज करता है या दूसरे के भडोपकरण की ?

भगवान—गौतम ! वह अपने भडोपकरण की ही खोज करता है, अन्य के भडोपकरण की नही ?

गौतम—भन्ते ! शीलव्रत, गुणव्रत आदि प्रत्याख्यान एव पौषधोपवास मे श्रावक के भाड क्या अभाड (स्वामित्वमुक्त) नही होते ?

भगवान—गौतम ! वह अभाड हो जाते हैं।

गौतम—भन्ते ! फिर ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि वह अपना भांड खोजता है, अन्य का नही।

भगवान—गौतम ! सामायिक करनेवाले श्रावक के मन मे यह भावना होती है कि—यह स्वर्ण, हिरण्य, वस्त्र आदि द्रव्य मेरे नही हैं, (उनके साथ ममत्व भाव नही रखता) किन्तु सामायिक व्रत पूर्ण होने के वाद वह ममत्व भाव से युक्त हो जाता है,

इसलिए गौतम ! कहा जाता है कि वह स्वकीय भाड की अनुगवेषणा करता है, परकीय भाड की नही ।[२२]

आत्मा का गुरुत्व लघुत्व

●

गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—भन्ते ! यह जीव-आत्मा (अरूपी होने के कारण) भारीपन-गुरुत्व कैसे प्राप्त करता है ?

भगवान—गौतम ! प्राणातिपात मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य आदि के सेवन से आत्मा गुरुत्व प्राप्त करता है ।

गौतम—भन्ते ! यह आत्मा लघुत्व कैसे प्राप्त करता है ?

भगवान—गौतम ! प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का निरोध करने से आत्मा लघुत्व प्राप्त करता है। इसी प्रकार प्राणातिपातादि के सेवन से जीव संसार दीर्घ करता है, और उनके त्याग से संसार को कम करता है ।"[२३]

लघुता प्रशस्त है

●

गौतम स्वामी ने पूछा—भते ! श्रमण निर्ग्रंथो के लिए क्या लघुता, अल्पेच्छा, अममत्व, अनासक्ति एव अप्रतिवद्धता प्रशस्त हैं ?

भगवान ने कहा—गौतम ! ये श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए प्रशस्त है[२४] (इन गुणो को अपनाना चाहिए) ।

कषाय का आधार क्या है ?

●

एकबार गौतमस्वामी ने भगवान से पूछा—"भंते ! कषाय कितने प्रकार के हैं ?"

---

२२. भगवती सूत्र शतक ८।५

२३. भगवती शतक १।९

२४. भगवती शतक १।९

भगवान ने कहा—"गौतम ! कषाय चार प्रकार के हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ।"

गौतम—"भन्ते ! क्रोध आदि कषायो की प्रतिष्ठा (आधार भूमि) क्या है ?"

भगवान—"गौतम ! कषाय आत्म-प्रतिष्ठित (स्व-आधार से) पर-प्रतिष्ठित, तदुभय प्रतिष्ठित एव अप्रतिष्ठित (विना किसी कारण के) यो चार प्रकार से कषाय की प्रतिष्ठा (आधार—कारण भूमि) है।"

गौतम—"भन्ते ! क्रोध आदि की उत्पत्ति के कितने कारण हैं ?"

भगवान—"गौतम ! चार प्रकार से क्रोध आदि की उत्पत्ति होती है। क्षेत्र से, वस्तु से, शरीर से एव उपधि से।"[२५]

उपासना का फल

●

एकवार भगवान महावीर कौशाम्वी से विहार करके राजगृह पधारे। गौतम स्वामी नगर मे भिक्षा के लिये गए तो वहाँ उन्होंने एक चर्चा सुनी—तु गिका नगरी के वाहर उद्यान मे भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य—स्थविर आये हैं। उनसे श्रावको ने पूछा—संयम का फल क्या है ? तप का फल क्या है ? इस पर स्थविरो ने उत्तर दिया—सयम का फल है आश्रव रहित होना और तप का फल है कर्म का नाश।

इस उत्तर पर कुछ गृहस्थो ने कहा—"सयम से देवलोक की प्राप्ति होती है, इसका तात्पर्य क्या है ?"

स्थविरो ने उत्तर दिया—"सराग अवस्था मे पाले गये सयम एव सराग अवस्था मे आचरित संयम मे अन्तर की आसक्ति के कारण वह मोक्ष के वदले देवत्व को प्राप्त करता है।"

इस प्रकार प्रश्नोत्तरो से गौतम स्वामी को वडा आश्चर्य हुआ। वे भगवान महावीर के समीप आकर पूछने लगे—"भन्ते ! उन पार्श्वापत्य श्रमणो का यह उत्तर

---

२५ प्रज्ञापना, पद १४

क्या सत्य है ? वे इस प्रकार का यथार्थ उत्तर देने मे समर्थ हैं ? क्या वे विशेष ज्ञानी हैं ?"

भगवान ने कहा—"गौतम ! उन स्थविर श्रमणो ने यथार्थ बात कही है। उन्होने अपनी बडाई के लिये नही, किन्तु सत्य तथ्य की दृष्टि से यह बात कही है, मैं भी यही बात कहता हूँ।"

गौतम ने पूछा—"भन्ते ! तथा प्रकार के श्रमण ब्राह्मणो की पर्युपासना-सेवा करने से मनुष्य को क्या फल मिलता है ?"

भगवान—सेवा से सद्शास्त्र का श्रवण मिलता है।

गौतम—शास्त्र श्रवण का क्या फल है ?

भगवान—ज्ञान ! (ज्ञेय उपदेश का बोध)

गौतम—ज्ञान का फल ?

भगवान—विज्ञान ! (आत्म बोध)

गौतम—विज्ञान का फल ?

भगवान—प्रत्याख्यान। (पाप-परिहार)

गौतम—प्रत्याख्यान का फल ?

भगवान—प्रत्याख्यान का फल है सयम।

गौतम—सयम का फल ?

भगवान—आश्रव निरोध। (अनाश्रव)

गौतम—अनाश्रव का फल ?

भगवान—तप।

गौतम—तप का फल ?

भगवान—कर्म मल की शुद्धि।

गौतम—शुद्धि का फल ?

भगवान—सर्व क्रियाओ से मुक्ति। (निष्क्रियता)

गौतम—निष्क्रियता का फल ?

भगवान—निष्क्रियता प्राप्त होने पर आत्मा को सिद्धि लाभ प्राप्त हो जाता है।[२६]

ज्ञान और क्रिया

गौतमस्वामी ने पूछा—"भगवन् । कोई मनुष्य ऐसा व्रत लेता है कि मैं आज से सर्व प्राण, भूत, जीव एव सत्वो की हिंसा का त्याग करता हूँ, तो उसका वह व्रत 'सुव्रत' कहलायेगा या 'दुर्व्रत' ?

भगवान ने कहा—"गौतम । वह व्रत 'सुव्रत' भी हो सकता है और 'दुर्व्रत' भी।"

गौतम—"भगवन् ! इसका क्या कारण है ?"

भगवान—"गौतम ! उक्त प्रकार का व्रत लेने वाला व्यक्ति जीव, अजीव, त्रस-स्थावर के परिज्ञान से रहित है, तो उसका व्रत, सुव्रत नही, किन्तु 'दुर्व्रत' कहलायेगा। जीव-अजीव के ज्ञान से रहित व्यक्ति यदि कहे कि मैं हिसा का त्याग करता हूँ तो उसकी वह भाषा मिथ्या भाषा है, वह असत्यभाषी पुरुष मन-वचन कर्मणा स्वय हिंसा करना, करवाना और उसका अनुमोदन करना इन तीनो प्रकार के सयम से रहित है, विरति से रहित है और एकात हिंसा करने वाला अज्ञानी है।"

जिस पुरुष को जीव अजीव का ज्ञान है, वह यदि हिंसा न करने का व्रत लेता है तो उसका व्रत 'सुव्रत' है। वह सर्व प्राण-भूत-सत्वो के प्रति सयत है, विरत है, सवर युक्त एकात अहिसक तथा ज्ञानी है।[२७]

शील और श्रुत

गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—"कई इतर दर्शन वाले कहते है, शील (आचार) ही श्रेय है, दूसरे कई कहते हैं—श्रुत (ज्ञान) श्रेय है, और एक तीसरे

---

२६. सवणे नाणे विन्नाणे पच्चक्खाणे य सजमे।
अणण्हवे तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धि ॥
—भगवती श० २।५

२७ भगवती श० ७।२

प्रकार के व्यक्ति कहते है—अन्योन्य निरपेक्ष शील और श्रुत श्रेय हैं– भगवन् इनमे किसका कथन योग्य है ?

भगवान—गौतम ! उन सभी का कथन मिथ्या है। (ऐकातिक होने से ससार मे चार प्रकार के पुरुष हैं—

१. शील संपन्न हैं, किन्तु श्रुत सपन्न नही,

२. श्रुत सपन्न है, किन्तु शील सपन्न नही,

३ शील सपन्न भी हैं और श्रुत सपन्न भी,

४. शील सपन्न भी नही और श्रुत सपन्न भी नही।

प्रथम कोटि का पुरुष पाप से उपरत है, किन्तु ज्ञान से रहित है, वह अशत धर्म का आराधक है।

दूसरी कोटि का पुरुष—पाप से निवृत नही है, किन्तु ज्ञानवान है, वह अंशत धर्म का विराधक है।

तीसरी कोटि का पुरुष—पाप से निवृत्त भी है और ज्ञानी भी है, वह सम्पूर्ण रूप से धर्म का आराधक है।

चौथी कोटि का पुरुष—पाप से निवृत्त भी नही है और धर्म ज्ञान से रहित भी है, वह पुरुष सम्पूर्ण रूप से धर्म का विराधक है।[२८]

दीर्घायुष्य का कारण

●

गौतम ने पूछा—"भगवन् ! जीव किस कारण से अल्पकालिक आयुष्य बाधता है?

भगवान—"गौतम ! तीन कारण से—हिंसा करने से, असत्य वचन बोलने से, श्रमण ब्राह्मण को सदोष आहार पानी देने से।"

गौतम—"भगवन् ! जीव किस कारण से दीर्घायुष्य बांधने के निमित्त भूत कर्म बाँधता है ?"

---

२८. भगवती श० ८। उ० १०

भगवान—गौतम ! तीन कारण से ! अहिंसा की साधना से, सत्य भाषण से, श्रमण-ब्राह्मण को निर्दोष शुद्ध आहार पानी देने से ।[२९]

दुःखी-सुखी क्यों ?

●

गौतम ने पूछा—भगवन् ! जीव दीर्घकाल तक दु ख पूर्वक जीने के निमित्त कर्म क्यो, व किस कारण करता है ?

भगवन्—गौतम । हिंसा करने से, असत्य बोलने से तथा श्रमण-ब्राह्मणो की हीलना, निंदा, अपमान आदि करके अमनोज्ञ आहार पानी देने से जीव दु.खपूर्वक जीने योग्य अशुभ कर्म का बधन करता है ।"

गौतम—भगवन् ! जीव सुखपूर्वक दीर्घकाल तक जीने योग्य कर्म किस कारण से वाधता है ?

भगवन्—गौतम ! हिंसा-निवृत्ति से, असत्य निवृत्ति से तथा श्रमण-ब्राह्मणो की वदना उपासना करके प्रियकारी आहार पानी का दान करने से जीव शुभ दीर्घायुष्य का वध करता है ।"[३०]

सिद्ध स्वरूप

●

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! सिद्ध भगवान को सादि (आदि सहित) अपर्यवसित (अंत रहित-पुनर्जन्म से मुक्त) किसलिए और क्यो कहा जाता है ?

भगवान—गौतम ! जिस प्रकार अग्नि से जला देने पर वीज की प्रजनन शक्ति नष्ट हो जाती है, वह पुन अकुर रूप मे उत्पन्न नहीं हो सकता । इसीप्रकार सिद्ध भगवान ने कर्म रूप वीजो को दग्ध कर डाला है, अत जन्म के नये अकुर उत्पन्न नही हो सकते, इसकारण सिद्ध भगवान को सादि अपर्यवसित कहा जाता है।

---

२९. भगवती, श० ५ । उ० ६

३०. भगवती, श० ५ । उ० ६

गौतम—भगवन् ! सिद्ध कहाँ जाके रुके जाते हैं, कहाँ जाके ठहरते हैं, शरीर कहाँ छोडते हैं, और कहाँ जाकर सिद्ध होते है ?

भगवन्—"गौतम ! अलोक के कारण सिद्धो की गति रुक जाती है, लोकाग्र भाग पर ठहरते है, यहाँ (ससार मे) शरीर को छोडकर वहाँ, (सिद्धशिला) पर जाकर सिद्ध होते हैं ?"[३१]

श्रमण केशीकुमार और गौतम

एकवार मिथिला से विहार करके भगवान महावीर हस्तिनापुर की ओर पधारे। गणधर गौतम अपने शिष्य समुदाय के साथ श्रावस्ती पधारे, और निकटवर्ती कोष्ठक उद्यान मे ठहरे। उसी नगर के बाहर एक ओर तिन्दुक उद्यान था, जिसमे पार्श्वसतानीय निर्ग्रन्थ श्रमण केशीकुमार अपने शिष्य समुदाय के साथ आकर ठहरे हुए थे।

श्रमण केशी कुमार कुमारावस्था मे ही प्रव्रजित हो गये थे। वे ज्ञान व चारित्र के पारगामी तथा मति, श्रुत व अवधि—तीन ज्ञान से युक्त पदार्थो के स्वरूप के ज्ञाता थे।[३२]

उस समय गौतम व केशी कुमार के शिष्यो ने एक दूसरे को देखा, तब दोनो के शिष्य समुदाय मे कुछ शकाएँ उत्पन्न हुई—"हमारा धर्म कैसा और इनका धर्म कैसा ? हमारी आचार-धर्म-प्रणिधि कैसी और इनकी कैसी ? महामुनि पार्श्वनाथ ने चतुर्याम धर्म का उपदेश किया है और तीर्थंकर वर्धमान पाँच शिक्षारूप धर्म का

---

३१. औपपातिक ३ (सिद्ध वर्णन)

३२. श्रमण केशीकुमार के सम्बन्ध मे विद्वानो मे कुछ यह मत भेद है, कि ये केशी कुमार वे नही है जिन्होने प्रदेशी राजा को प्रतिबोध दिया था, चूँकि राय पसेणिय मे उनके सम्बध मे कहा है—**चउनाणोवगए**—वे चारज्ञान के धारक थे, जवकि इन केशीकुमार के लिए-**ओहिनाण सुए** (उत० २३ । २) श्रुतज्ञान एव अवधि ज्ञान से युक्त विशेषण आया है।

विशेप वर्णन के लिए देखें—भगवान पार्श्व एक अनुशीलन (देवेन्द्रमुनि) उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन (मुनि नथमल जी) पृ० ४००

उपदेश करते हैं। जव दोनो का लक्ष्य समान है तो, एक लक्ष्यवालो मे यह भेद कैसा ? एक ने सचेलक धर्म का उपदेश दिया है और एक अचेलक भाव का उपदेश करते है।" अपने शिष्यो की आशकाओ से प्रेरित होकर दोनो गौतम व केशीकुमार ने परस्पर मिलने का विचार किया। गौतम अपने शिष्य वर्ग के साथ तिन्दुक उद्यान मे आए, जहाँ कि श्रमण केशीकुमार ठहरे हुए थे। गणधर गौतम को अपने यहाँ आते हुए देखकर श्रमण केशीकुमार ने भक्ति-वहुमानपूर्वक उनका स्वागत किया। अपने द्वारा याचित पलाल, कुश, तृण आदि के आसन गौतम के सम्मुख प्रस्तुत किये। दोनो का मिलन देखने को अनेक कौतुहल प्रिय व्यक्ति भी उद्यान मे उपस्थित हो गए थे।

गौतम से अनुमति पाकर केशी कुमार ने चर्चा को आरम्भ किया—"महाभाग ! वर्धमान स्वामी ने पाँच शिक्षा रूप धर्म का उपदेश किया है, जब कि महामुनि पार्श्व-नाथ ने चतुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया है। मेधाविन् ! एक कार्य मे प्रवृत्त होने वाले साधको के धर्म मे विशेष भेद होने का क्या कारण है ? धर्म मे अन्तर हो जाने पर क्या आपको सशय नही होता ?"

गौतम ने गभीरतापूर्वक उत्तर दिया—"जिस धर्म मे जीवादि तत्वो का निश्चय किया जाता है, उसके तत्व को प्रज्ञा ही देख सकती है। काल-स्वभाव से प्रथम तीर्थ-कर के मुनि ऋजु जड और चरमतीर्थंकर के मुनि वक्रजड होते हैं, किन्तु मध्य-वर्ती तीर्थंकरो के मुनि ऋजुप्राज्ञ है। यही कारण है कि धर्म के दो भेद कहे गए हैं। प्रथम तीर्थंकर के मुनियो का कल्प दुर्विशोध्य और चरम तीर्थंकर के मुनियो का कल्प दुरनु-पाल्य होता है, पर मध्यवर्ती तीर्थंकरो के मुनियो का कल्प सुविशोध्य और सुपाल्य होता है।"

गौतम के उत्तर से श्रमण केशीकुमार को संतोष हुआ। वे वोले—"आयुष्मन् ! आपने मेरे एक प्रश्न का समाधान तो कर दिया, अव दूसरी जिज्ञासा को भी समाहित करें। वर्धमान स्वामी ने अचेलक धर्म का उपदेश दिया है और महामुनि पार्श्वनाथ ने सचेलक धर्म का, एक ही कार्य मे प्रवृत्त होने वालो मे यह अन्तर क्यो ? इसमे विशेष हेतु क्या है ? लिंग—वेप मे इस प्रकार अन्तर हो जाने पर क्या आपके मन मे विप्रत्यय उत्पन्न नही होता ?"

गौतम ने धैर्य पूर्वक सुना और वोले—"भगवन् ! लोक मे प्रत्यय के लिये, वर्पादि ऋतुओ मे सयम की रक्षा के लिए, सयम यात्रा के निर्वाह के लिए,

ज्ञानादि ग्रहण के लिए अथवा 'यह साधु है' इस पहचान के लिए जगत मे लिंग (चिन्ह) का प्रयोजन है। वस्तुतः दोनो ही तीर्थंकरो का सिद्धान्त यही है कि निश्चय मे मोक्ष के सद्भूत साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही हैं।"

केशीकुमार—"महाभाग ! आप अनेक सहस्र शत्रुओ के वीच खडे हैं। वे शत्रु आपको जीतने के लिए आपकी ओर आ रहे हैं। आपने उन शत्रुओ को किस प्रकार जीता ?"

गौतम—"जव मैंने एक शत्रु को जीत लिया, तो पाँच शत्रु जीत लिये गये। पाँच शत्रुओ के जीते जाने पर दस ! इसी प्रकार मैंने सहस्रो शत्रुओ को जीत लिया।"

केशीकुमार—"वे शत्रु कौन हैं ?"

गौतम—"महामुने ! वहिर् भाव मे लीन आत्मा, चार कषाय व पाँच इन्द्रियाँ शत्रु हैं। उन्हें जीत कर मे कुशल पूर्वक विचरता हूँ।"

श्रमण केशीकुमार वोले—"मुने ! ससार मे अनेक जीव पाश-वद्ध देखे जाते हैं, किन्तु आप पाश-मुक्त और लघुभूत होकर कैसे विचरते हैं ?"

गौतम—"मुने ! मैंने उन पाशो का सव तरह से छेदन कर डाला है, अव उन्हे विनष्ट कर मुक्त-पाश और लघुभूत होकर विचरता हूँ।"

केशीकुमार—"भन्ते ! वे पाश कौन से हैं ?"

गौतम—भगवन् ! राग-द्वेष और स्नेहरूप तीव्र पाश है, जो वड़े भयंकर हैं। मैं इनका छेदन कर कुशलपूर्वक विचरता हूँ।"

केशीकुमार—"गौतम ! अन्त करण की गहराई से समुद्भूत लता, जिसका फल-परिणाम अत्यन्त विपमय है, उस लता को आपने किस प्रकार उखाड डाला ?

गौतम—"मैंने उस लता को जडमूल से उखाड कर छिन्न भिन्न कर फैंक दिया है, अत मैं उन विषमय फलो के भक्षण से सर्वथा मुक्त हो गया हूँ।"

केशीकुमार—"महाभाग ! वह लता कौन-सी है ?"

गौतम—महामुने ! संसार मे तृष्णा रूप लता बहुत भयंकर है और दारुण फल देने वाली है। उसका विधि पूर्वक उच्छेद कर मैं विचरता हूँ।

केशीकुमार—"मेधाविन् ! इस देह मे घोर तथा प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो रही है। वह सम्पूर्ण शरीर को भस्मसात् करनेवाली है। आपने उसे कैसे शान्त किया, कैसे बुझाया ?"

गौतम—"तपस्विन् ! महामेघ से प्रसूत पवित्र जल को ग्रहण कर मैं उस अग्नि को बुझाता रहता हूँ, अत वह जल-सिक्त अग्नि मुझे नही जलाती।"

केशीकुमार—"महाभाग ! वह अग्नि क्या है और जल कौनसा है ?"

गौतम—"श्रीमन् ! कषाय अग्नि है। श्रुतशील और तप जल है। श्रुत-जलधारा से अभिसिंचित वह अग्नि मुझे नही जलाती है।"

केशीकुमार—"तपस्विन् ! यह साहसिक, भीम, दुष्ट, अश्व चारो ओर भाग रहा है। उस पर चढ़े हुए आप भी उसके द्वारा उन्मार्ग मे कैसे नही ले जाए गये ?"

गौतम—"महामुने ! भागते हुए अश्व को मैं श्रुतरूप-रस्सी से (लगाम) बाँध कर रखता हूँ, अत वह उन्मार्ग मे नही जा पाता, सदा सन्मार्ग मे ही प्रवृत्त रहता है।"

केशीकुमार—"यशस्विन् ! आप अश्व किसको कहते हैं।"

गौतम—"व्रतिवर ! मन ही दु साहसिक व भीम अश्व है। वही चारो ओर भगता है। मैं कन्थक अश्व की तरह धर्म-शिक्षा के द्वारा उसका निग्रह करता हूँ।"

केशीकुमार—"मुनिप्रवर ! ससार मे ऐसे बहुत से कुमार्ग हैं, जिन पर चलने से जीव सन्मार्ग से च्युत हो जाता है। किन्तु आप सन्मार्ग मे चलते हुए उनसे विचलित कैसे नही होते हैं ?"

गौतम—"आयुष्मन् ! जो सन्मार्ग मे गमन करने वाले है व उन्मार्ग मे परशान करने वाले हैं, मैं उन्हे अच्छी तरह जानता हूँ, अतः मैं अपने सन्मार्ग से हटता नही हूँ।"

केशीकुमार—"विज्ञवर ! वह सन्मार्ग और उन्मार्ग कौन सा है ?"

गौतम—"मतिमन् ! कुप्रवचन को माननेवाले सभी पाखण्डी उन्मार्ग मे चलने वाले हैं। जिन भाषित मार्ग ही सन्मार्ग है। और यह मार्ग निश्चित ही उत्तम निरावाध है।"

केशीकुमार—"ऋषिवर ! महान् उदक के वेग मे वहते हुए प्राणियो के लिए शरण और प्रतिष्ठारूप द्वीप आप किसे कहते है ?"

गौतम—श्रीमन् ! एक महाद्वीप है। वह वहुत विस्तृत है। जल के महान वेग की वहाँ गति नही है।"

केशीकुमार—प्राज्ञवर ! वह महाद्वीप कौनसा है ?

गौतम—जरा-मरण के वेग से डूवते हुए प्राणियो के शिए धर्मद्वीप है, प्रतिष्ठारूप है और उत्तम शरण रूप है।

केशीकुमार—"महाप्रवाह वाले समुद्र मे एक नौका विपरीत दिशा मे तीव्रगति से भाग रही है। आप उसमे आरूढ हो रहे हैं। फिर पार कैसे जा सकेंगे ?"

गौतम—"जो सच्छिद्र नौका है, वह पारगामी नही हो सकती, किन्तु छिद्र रहित नौका अवश्य ही पार पहुँचाने मे समर्थ होती है।"

केशीकुमार—'वह नौका कौनसी है ?'

गौतम—'शरीर नौका है। आत्मा नाविक है। ससार समुद्र है, जिसे महर्षिजन सहज ही तैर कर पार पहुँचते हैं।'

केशीकुमार—'वहुत सारे प्राणी घोर अन्धकार मे पडे हैं। इन प्राणियो के लिए लोक मे उद्योत कौन करता है।

गौतम—"उदित हुआ सूर्य लोक मे सव प्राणियो के लिए उद्योत करता है।"

केशीकुमार—'वह सूर्य कौन-सा है ?'

गौतम—'जिनका संसार (राग-द्वेष-मोह) क्षीण हो गया है, ऐसे सर्वज्ञ जिन भास्कर का उदय ससार मे हो चुका है। वे ही सारे विश्व मे उद्योत करते हैं।'

केशीकुमार—'आप शारीरिक और मानसिक दु खो से पीडित प्राणियो के लिए क्षेम और शिव रूप, वाधा रहित कौनसा स्थान मानते हैं ?'

गौतम—'लोक के अग्र भाग मे एक ध्रुव स्थान है, जहाँ जरा, मृत्यु, व्याधि और वेदना नही है। किन्तु वहाँ आरोहण करना नितान्त दुष्कर है।'

केशीकुमार—'वह कौन सा स्थान है ?'

गौतम—'महर्षियों द्वारा प्राप्त वह स्थान निर्वाण, अव्यावाध्य, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनावाध, इन नामो से विश्रुत है। मुने! वह स्थान शाश्वतवास का है, लोक के अग्रभाग मे स्थित है और दुरारोह है। इसे प्राप्त कर भव परम्परा का अन्त करने वाले मुनिजन चिन्तामुक्त हो जाते हैं।

श्रमण केशीकुमार ने चर्चा का उपसहार करते हुए कहा—"महामुने गौतम! आपकी प्रज्ञा उत्तम है। आपने मेरे सशयो का उच्छेद कर दिया है, अत हे सशयातीत! सर्व सूत्र महोदधि के पारगामिन्! आपको नमस्कार है।" गणधर गौतम को वन्दना करके श्रमण केशीकुमार ने अपने वृहत् शिष्य समुदाय सहित उनसे पच महाव्रत रूप धर्म को भाव से ग्रहण किया और महावीर के भिक्षु सघ मे सम्मिलित हुए।[33]

उदकपेढाल और गौतम

●

नालन्दा मे लेप नामक धनाढ्य गाथापति रहता था। वह श्रमणोपासक था। नालन्दा के ईशानकोण मे उसने एक सुन्दर उदकशाला[34] वनवाई थी। उस उदकशाला के निकट ही हस्तियाम नामक उद्यान के आरामागार मे भगवान गौतम स्वामी

---

३३. उत्तराध्ययन, २३ व अध्ययन के आधार पर

३४ प्रो० जेकोवी ने सेक्रेड वुक्स आव दि इस्ट, वाल्यूम् ४५ मे, तथा गोपालदास पटेल ने 'महावीर नो सयम धर्म, (हिन्दी) पृ० १२७ मे उदगसाला का अर्थ स्नानगृह किया है। जवकि आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधानचिंतामणिभूमिकाड, श्लोक ६७ मे 'प्रपा' (प्याऊ) अर्थ किया है। यही अर्थ मागधी कोष कार शतावधानी प० रत्नचन्द्र जी महाराज ने किया है। अर्ध मागधी कोष भा० २ पृ० २१८

ठहरे हुए थे। भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य उदकपेढाल पुत्र नामक निर्ग्रन्थ भी वही निकट ठहरे हुए थे। एकबार वे गणधर गौतम के निकट आये और बोले—"आयुष्मन्! कुमार पुत्र नामक श्रमण निर्ग्रन्थ तुम्हारी मान्यताओ का प्ररूपण करते हैं, वे हठ पूर्वक गृहपति श्रमणोपासको को इस प्रकार का नियम दिलवाते हैं कि "मैं समस्त प्राणियो की हिंसा का त्याग नही कर सकता, किन्तु चलने फिरने वाले प्राणियो की हिंसा का त्याग करूँगा।" परन्तु विश्व के समस्त प्राणी त्रस व स्थावर योनियो मे चक्र लगाते हैं। त्रस योनि से स्थावर मे और स्थावर योनि से त्रस मे अबाध गति से घूमते रहते है। इस कारण ससार का कोई भी प्राणी न तो मात्र त्रस है, और न मात्र स्थावर ही है, ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त प्रतिज्ञा करने वाला स्थावर प्राणियो की हिंसा की छूट समझ लेता है और वह उनकी हिंसा करता है। और वह इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा से च्युत होता है। जो प्राणी वर्तमान मे स्थावर है, वह पूर्व जन्म मे त्रस भी रह चुका है। आयुष्मन्! इस प्रकार की प्रतिज्ञा दिलाने वाले को क्या दोष नही लगता?"

गौतम ने समाधान करते हुए कहा—"महाभाग! आपका यह कहना ठीक नही है, क्यो कि यह विल्कुल अयथार्थ है एव दूसरो को भुलावे मे गिराने जैसा है। संसार के समस्त प्राणी एक योनि से दूसरी योनि मे घूमते रहते हैं, यह ठीक है, जो प्राणी इस वक्त त्रस के रूप मे उत्पन्न दिखाई देता है, उसी के सम्बन्ध मे यह नियम लागू पडता है। आप जिसे इस समय त्रस रूप उत्पन्न मानते हैं, उसे ही हम त्रस कहते हैं। जिसके त्रस वनने योग्य कर्म उदय प्राप्त हो, उसे ही त्रस प्राणी कहा जाता है।" इसी प्रकार स्थावर प्राणियो के विषय मे भी समझना चाहिए। अतएव प्रतिज्ञा भग होने तथा प्रतिज्ञा दिलाने वाले को दोष लगने की वात न्याय-सगत नही लगती।"

गौतम ने इस स्थिति को अधिक स्पष्ट करते हुए उदाहरण पूर्वक वतलाते हुए कहा—"जिस प्रकार किसी व्यक्ति ने यह नियम लिया कि—मैं दीक्षित होकर जो साधु वन चुका होगा ऐसे व्यक्ति की हिंसा नही करूँगा, परन्तु गृहस्थ जीवन मे रहते हुए व्यक्ति की हिंसा न करने का नियम मुझे नही है। ऐसी स्थिति मे अगर कोई साधु वना और कुछ ही समय के पश्चात् अपने आपको साधुता के अनुपयुक्त पाकर गृहस्थ वन गया, अब अगर उपर्युक्त नियम लेने वाला व्यक्ति इस गृहस्थ वने हुए व्यक्ति की हिंसा करता है, तो उसकी प्रतिज्ञा का भग नही होता।

इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने केवल त्रस प्राणियो की हिंसा का प्रत्याख्यान किया हो, उसे इस जन्म मे जो प्राणी स्थावर हैं, उनकी हिंसा करने पर भी प्रतिज्ञा भंग का दोष नही लगता।"

एक अन्य प्रश्न करते हुए उदकपेढालपुत्र ने कहा—"आयुष्मन्! क्या ऐसा भी कोई समय हो सकता है जिसमे ससार के सब जगम प्राणी स्थावर के रूप मे उत्पन्न हो जावें और फिर जो जगम प्राणियो की हिंसा न करना चाहते हो, उन्हे इस व्रत की आवश्यकता ही न रहे, अथवा उनके द्वारा जगम प्राणियो की हिंसा न होने की सभावना ही न रहे?

गौतम ने प्रश्न का समाधान करते हुए कहा—"आयुष्मन्! ऐसा होना सम्भव नही, क्योकि सभी प्राणियो की विचारधारा व क्रियापद्धति एक साथ ही इतनी हीन नही हो सकती है, जिसके कारण सभी स्थावर के रूप मे जन्म लें। प्रत्येक समय मे पृथक्-पृथक् शक्ति व पुरुषार्थ करने वाले प्राणी अपने लिए भिन्न भिन्न गति-स्थिति तैयार करते रहते हैं। जैसे कि कुछ लोग, अपने आप को दीक्षित होने मे असमर्थ पाकर पोषध व अणुव्रतो के द्वारा देवता व मनुष्य आदि की शुभगति योग्य कर्म उपार्जन करते हैं। दूसरे कुछ अधिक लालसा वाले परिग्रही लोग नरक व तिर्यंच आदि की दुर्गति के योग्य कर्म उपार्जन करते हैं। कुछ दीक्षित साधु सत लोग उच्चकोटि के देवत्व के योग्य कर्मोपार्जन करते हैं। कुछ तथाकथित नामधारी कामास्कत साधु असुरयोनि व घोर पाप कर्म करने वाले अन्य स्थानो की तैयारी करते हैं। वहाँ से छूटकर भी वे अन्ध, मूक, वधिर अगहीनरूप दुर्गति के कर्म उपार्जन करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी अपने अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न गतियाँ प्राप्त करता रहता है। तव यह कैसे हो सकता है कि सभी प्राणियो को एक समान ही स्थान, व गति मिले। दूसरे जहाँ विविध प्रकार के प्राणी हैं, वहाँ उनके आयुष्य मे भी विविधता है। आयुष्य की विविधता का तात्पर्य है कि उनकी मृत्यु भी भिन्न समय मे होती है। भिन्न-भिन्न समय मे मृत्यु होने का अर्थ है कि ऐसा कभी नही हो सकता कि सभी प्राणी एक ही साथ मृत्यु प्राप्त होकर एक समान गति प्राप्त करें, जिसके फलस्वरूप किसी को व्रत लेने व हिंसा करने का प्रसग ही न आये।

गौतम के द्वारा तर्क युक्त समाधान पाकर उदकपेढाल पुत्र का सशय दूर हुआ। वह कुछ क्षण किंकर्तव्यविमूढ सा खडा रहा, फिर विना विनय सत्कार किए ही चलने लगा तो गौतम ने उसे शिक्षात्मक वाक्य कहकर विनय धर्म का

उपदेश दिया। गौतम के शिक्षापद सुनकर उदकपेढाल ने क्षमा मांगी और भगवान महावीर के निकट आकर पच महाव्रत रूप धर्म स्वीकार किया।[१४]

विकास और ह्रास का कारण

●

एक बार राजगृह के गुणशीलक उद्यान मे भगवान् महावीर पधारे। धर्म प्रवचन के पश्चात् गणधर गौतम के मन मे जिज्ञासा उत्पन्न हुई। भगवान महावीर के निकट आकर पूछा—"भगवन्! आत्मा का विकास और ह्रास किस कारण होता है?

भगवान ने कहा—'गौतम'! मैं इस तत्व को एक रूपक द्वारा तुम्हे समझाता हूँ। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा अपनी ज्योति, शुभ्रता और सौम्यता आदि मे पूर्णिमा के चन्द्रमा से हीन होता है। द्वितीया का चन्द्रमा उससे हीनतर होता हुआ अमावस्या के दिन हीनतम स्थिति को प्राप्त हो जाता है। उसकी ज्योत्स्ना, काति और शीतलता आदि गुणो का आभास तक नही मिलता।"

"भन्ते! यह विल्कुल सत्य है।

"गौतम! जो साधक क्षमा, सन्तोष, गुप्ति, सरलता, लघुता—नम्रता, मृदुता सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और त्याग—उक्त दस मुनि धर्मों के प्रति उपेक्षा करता है। असावधानी वरतता है, उनका यथाविधि पालन नही करता है, वह आत्मा की उज्वलता, उच्चता और समता आदि गुणो से कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक के चन्द्रमा की स्थिति के समान ह्रास की स्थिति मे चलता रहता है। उसके आत्मगुण हीन से हीनतर होते चले जाते है।

"• पुन शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्रमा विकास की ओर ऊर्ध्वगामी वनता है। उसकी ज्योत्स्ना और कान्ति आदि प्रतिरात्रि विकसित होते जाते हैं। प्रतिपदा के चन्द्रमा की तुलना मे द्वितीया का चन्द्रमा अधिक ज्योतिर्मय होता है और इसी क्रम से अन्तत पूर्णिमा का चन्द्रमा विकास की पूर्ण स्थिति मे पहुँच जाता है। वह सव कलाओ से परिपूर्ण हो जाता है।"

---

३४. सूत्र कृताग २।७। गौतम के शिक्षा वाक्य देखें खण्ड ४ निर्भीक शिक्षक मे

"गौतम ! इसी प्रकार जो मुमुक्ष श्रमण-धर्म स्वीकार करके क्षमा आदि दश धर्मों का आत्मा मे विकास करता जाता है, वह आत्मा की उच्च से उच्चतर और उच्चतम भूमिका को प्राप्त करता चला जाता है।"

"आत्मा के विकास और ह्रास का रहस्य जान कर गौतम ने प्रभु को वन्दन करते हुए कहा—' सत्य है प्रभु आपका कथन।"[३५]

उत्थान और पतन का रहस्य

●

एकवार भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशील उद्यान मे विराजमान थे। गणधर गौतम भगवान् के पास आए, विनयपूर्वक वद्धाञ्जलि होकर पूछा, —"भन्ते ! यह आत्मा कभी गुरुत्व (भारीपन) और कभी लघुत्व (हल्कापन) प्राप्त करता है, इसका क्या रहस्य है ?

भगवान ने इस गुरु गम्भीर प्रश्न को एक रूपक देकर समझाया—"गौतम ! कोई मनुष्य एक सूखे हुए छिद्र रहित तुम्वे को दर्भ (डाभ) आदि से वेष्टित कर उस-पर मिट्टी का एक लेप करता है और उसे धूप मे सुखा देता है। जब वह पहला लेप सूक जाता है, तो पुन उसी प्रकार तुम्वे पर दूसरा लेप करता है और उसे भी सुखा लेता है। इस क्रम से वह आठ लेप उस तुम्वे पर करता है और सुखा लेता है। पश्चात् वह पुरुष उस तुम्बे को किसी गहरे पानी की सतह पर छोड देता है तो क्या वह तुम्वा तैरेगा या डूव जाएगा ?"

"भते ! वह तो डूव ही जाएगा।"

"गौतम ! उसी प्रकार यह आत्मा जव हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य, कषाय आदि असत् प्रवृत्ति रूप पाप कर्म करता है, तो ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रूप पुद्गल का लेप अपने ऊपर लगा लेता है, और उसी कर्म रूपी लेप के कारण वह गुरुत्व (भारीपन) प्राप्त करके नरक, तिर्यच गति रूप ससार समुद्र मे डूव जाता है।"

"और जव उस तुम्वे पर से दर्भ आदि के वन्धन सडगल कर टूटने लगते हैं, मिट्टी के लेप साफ होते जाते हैं, तो वह तुम्वा जलाशय की जमीन की सतह से कुछ

---

३५. ज्ञाता धर्मकथा १०

कुछ ऊपर उठने लगता है। धीरे-धीरे जब समस्त लेप उतर जाते हैं तो तुम्बा अपने मूल रूप मे आ जाता है और पानी की ठीक ऊपर की सतह पर स्वत. ही तैरने लग जाता है।"

"इसी प्रकार आत्मा के कर्म जब कुछ क्षीण होते हैं, तो वह ऊपर उठने लगता है। जब समस्त कर्म-मल क्षीण हो जाते है, तो आत्मा संसार से सर्वतोभावेन ऊपर उठ आता है, लोकाग्र मे स्थित होकर सिद्ध, बुद्ध, निरंजन, निर्विकार परमात्मा हो जाता है। यही आत्मा का लघुत्व (हल्कापन) है।

गौतम की जिज्ञासा शान्त हुई। वे श्रद्धावनत होकर कह उठे—"भन्ते! यह सत्य कहा आपने।[३६]

० ०

२

कर्मफल विषयक

गणधर गौतम द्वारा स्थान-स्थान पर कर्मफल-विषयक अर्थात् किसी मनुष्य या देव की समृद्धि देखकर अथवा किसी मनुष्य को घोर कष्ट पाता देखकर उसके विगत जीवन से सम्बन्धित प्रश्न किये गये हैं।

प्रदेशीराजा

●

रायपसेणी सूत्र का पूरा प्रदेशीप्रकरण गौतम के प्रश्न का उत्तर है।[३७] सूर्याभ देवता जब भगवान महावीर के समवसरण मे अपनी विशाल ऋद्धि एव दैविक

---

३६. ज्ञाता धर्मकथा ६

३७. प्रदेशी राजा के वर्णन की तुलना के लिए देखें बौद्ध ग्रथ-'पयासि राजन्य सुत्त' (दीघनिकाय २३)

शक्ति का अद्भुत प्रदर्शन एवं दिव्य नाटक दिखाता है तो, गौतम स्वामी के मन मे जिज्ञासा उठती है—इसने पूर्व भव मे ऐसा क्या पुण्य किया था, यह कौन था ? इसने क्या दान दिया, क्या रूखा-सूखा निर्दोष आहार किया, किस प्रकार का तपश्चरण किया और किन-किन विशिष्ट साधना-विधियो की आराधना की ? किस तथारूप श्रमण के पास आर्यधर्म का श्रवण कर उस पर श्रद्धा प्रतीति एव आचरण किया, जिसके प्रभाव से इस प्रकार की विपुल दिव्य देव ऋद्धि प्राप्त की है ?" [३८]

गौतम स्वामी के इसी प्रश्न के उत्तर मे पूरा रायपसेणी सूत्र का व्याख्यान हो जाता है।

मृगापुत्र

इसी प्रकार विपाक सूत्र का पूरा वर्णन पूर्व एव भावी जीवन के दुष्कर्मों एव सत्कर्मों का लेखा जोखा, एव उनके कटु एव मधुर परिणामो की रोमाचक कहानी प्रस्तुत करते हैं।

मृगापुत्र का वर्णन पीछे किया जा चुका है, उसकी दु खमय वीभत्स अवस्था देखकर गौतम स्वामी के मन मे वितर्क उठता है—"इस पुरुष ने पूर्व जन्म मे किस प्रकार के घोर, दुष्कर्म किये होंगे, जिनके कटु परिणामो को भोगता हुआ यह प्रत्यक्ष मे ही नरक के सदृश घोर वेदना अनुभव कर रहा है ?" [३९]

गौतम स्वामी के इसी वितर्क के उत्तर मे भगवान महावीर मृगापुत्र के पूर्व जीवन की पाप-पूर्ण लोमहर्षक कहानी गौतम के समक्ष उद्घाटित कर देते है। इसी प्रकार उज्झित कुमार को जव अपराधी के रूप मे वध्यभूमि की ओर ले जाते देखते है, तो उनके मन मे करुणा के साथ उसके कृत्याकृत्य का विमर्श भी होता है, वे भगवान महावीर से उसके कष्ट पाने का कारण पूछते है और भगवान महावीर उसके

---

३८. पुव्वभवे के आसी ? किनामए ? किवा दच्चा, किंवा भोच्चा, किंवा किच्चा, किंवा समायरित्ता : जेण सूरियाभेण देवेण सा दिव्वा देविड्ढी जाव देवाणु भावे लद्धे ? —रायपसेणी ४२

३९. अहो ण इमे दारए पुरा पोराणाण दुच्चिण्णाण' पच्चक्ख खलु अयं पुरिसे नरग-पडिरुविय वेयण वेयइ त्ति' । —विपाक १।१

दुष्कर्मो के वर्णन सुनाकर—कडाणं कम्माणं वेइयत्ता मोक्खो णत्थि अवेइत्ता [४०] के सिद्धान्त वाक्य की पुष्टि करते हैं।

सुवाहुकुमार

●

दु ख विपाक की भाति सुख विपाक मे भी दस पुरुषो की जीवन गाथा है। सुवाहु कुमार की समृद्धि, सौम्यता, भव्यता आदि उत्कृष्ट मनुष्य ऋद्धि देखकर गौतम स्वामी भगवान से पूछते हैं—"भते! सुवाहुकुमार इतना इष्ट, प्रिय, मनोहर सौम्य, सुभग, प्रिय दर्शन लग रहा है, इस प्रकार की उत्तम मनुष्य ऋद्धि इसने प्राप्त की है वह किन शुभ कर्मो, उत्कृष्ट तपश्चरणो का फल है?" इसके उत्तर मे भगवान सुवाहु कुमार का पूर्व जीवन वृत्त सुनाते हैं।[४१]

○ ○

३

लोक विषयक

लोक एव जीव

●

गौतम स्वामी ने पूछा—"भगवन्! यह लोक कितना वडा है?"

भगवान ने कहा–गौतम! यह लोक वहुत ही वडा है, पूर्व-पश्चिम आदि सभी दिशाओ में असंख्य कोटा-कोटि योजन लवा चौडा है, इसका विस्तार अपरिमेय है।"

---

४०. भगवती सूत्र

४१. विस्तार के लिए देखिए-विपाक सूत्र २।

गौतम—भगवन् ! इतने विशाल लोक मे ऐसा कोई परमाणु जितना प्रदेश भी है, जहाँ यह जीव उत्पन्न न हुआ हो, और न जहाँ मरण प्राप्त किया हो ?"

भगवान—गौतम ! यह बात यथार्थ नही है। (भगवान ने उदाहरण दिया) गौतम ! जिस प्रकार कोई एक पुरुष सौ बकरी रखने के लिए एक बाडा बनाता है। और फिर उसमें उतनी सी जगह मे हजार बकरी भर देवे, उसमे खूब पानी, और घास चरने की सुविधा हो, अब छ मास तक वे एक हजार बकरियाँ उस बाडे मे बंद रही तो, क्या यह संभव है कि उस बाडे का एक कोई परमाणु जितना भी प्रदेश उन बकरियो के मूत्र, लीडी, सीग, पद-नख आदि के द्वारा अस्पृष्ट रहा हो ?

गौतम—भगवन् ! नही, ऐसा नही हो सकता !

भगवान—गौतम ! उस बाड़े मे एकाधा प्रदेश ऐसा रह भी सकता है, जहाँ बकरी की लीडी, मूत्र आदि का स्पर्श न हुआ हो, किंतु लोक के विषय मे यह नही हो सकता। चूँकि लोक शाश्वत है, संसार अनादि है, और जीव नित्य है तथा कर्म एव जन्म मरण की बहुलता के कारण एक भी ऐसा प्रदेश नही है, जहाँ जीव ने जन्म धारण न किया हो, तथा मृत्यु प्राप्त न की हो। [४२]

परमाणु शाश्वत अशाश्वत

●

गौतम स्वामी ने पूछा—"भगवन् परमाणु शाश्वत है या अशाश्वत ?"

भगवान ने कहा-'गौतम ! परमाणु द्रव्य रूप मे शाश्वत है, और पर्याय रूप मे अशाश्वत है।"[४३]

अस्तित्व नास्तित्व

●

गौतम स्वामी ने पूछा—"भगवन् ! क्या अस्तित्व अस्तित्व मे परिणत होता है, और नास्तित्व नास्तित्व मे ?"

---

४२. नत्थि केई परमाणु पोग्गल मेत्ते वि पएसे जत्थ ण अय जीवे न जाए वा, न मए वा वि। —भगवती १२।७

४३. भगवती सूत्र १४।४

भगवान—"हाँ गौतम ! यह ठीक है।"

गौतम—"भगवन् ! क्या वह प्रयोग (जीव के उद्यम) से परिणमता है, या स्वभाव से ?"

भगवन्—गौतम ! प्रयोग से भी परिणमता है और स्वभाव से भी ?[४४]

देवासुर संग्राम

•

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! क्या देव और असुरो का सग्राम होता है ?"

भगवान—"हाँ, गौतम ! होता है, जब उनमे संग्राम होता है, तब तृण, लकडी पत्ता और कंकर भी, जिस किसी वस्तु को देव स्पर्श करते हैं तब वह उनका शस्त्र बन जाता है, किंतु असुर कुमार के लिए तो उनके विकुर्वणा किए हुए शस्त्र मात्र ही शस्त्र होते हैं ?" [४५]

देवासुर विरोध का कारण

•

गौतम स्वामी ने पूछा—"भगवन् ! असुरकुमार सौधर्मकल्प देवलोक तक जाते हैं इसका क्या कारण है ?"

भगवान—"गौतम ! उन देवो एव असुरकुमारो मे जन्मना वैर (भव-प्रत्ययिक वैर) होता है। वे देवो को, देवियो के साथ आनन्द भोगते हुए, कष्ट देते हैं एवं उनके दिव्य रत्नो को चुराकर एकान्त मे कही जाकर छुप जाते हैं।"[४६]

देवों के भेद

•

गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—"भगवन् ! देव कितने प्रकार के होते हैं ?"

---

४४ भगवती १।३

४५ भगवती १८।८

४६. भगवती १८।७

भगवान ने कहा—"गौतम ! देव पाँच प्रकार के कहे गये हैं।"

(१) भव्य द्रव्य देव—भविष्य मे देव योनि प्राप्त करने वाला

(२) नरदेव—मनुष्यो मे देव के समान पूज्य।

(३) धर्मदेव—शास्त्र आदि का उपदेश करने वाला धर्मगुरु।

(४) देवाधिदेव—मनुष्य एव देवो के पूज्य अरिहत।

(५) भावदेव—देवगति को प्राप्त देवता।[४७]

क्या देवता अलोक में हाथ फैला सकता है ?

गौतम ने भगवान से पूछा—"भन्ते ! क्या महान ऋद्धि वाला देव लोकान्त पर खड़ा होकर अपना हाथ अलोक मे फैलाने या खीचने मे समर्थ हो सकता है ?

भगवान ने कहा—"गौतम ऐसा नही हो सकता है।"

गौतम—"भन्ते ! किस कारण से ऐसा नही हो सकता ?"

भगवान—"गौतम ! अलोक मे धर्मास्तिकाय का अभाव है, अत वहाँ जीव एव पुद्गल की गति नही हो सकती। पुद्गल आहार रूप मे, शरीर रूप मे, कलेवर रूप मे तथा श्वासोच्छ्वास आदि के रूप मे सदा जीव के साथ उपचित (सलग्न) रहते हैं, अर्थात् पुद्गल स्वभावत जीवानुगामी होते हैं, जहाँ जिस क्षेत्र मे जीव होता है, वही पुद्गल गति कर सकता है, और इसी प्रकार पुद्गल का आश्रय ग्रहण कर जीव गति कर सकता है। अलोक मे दोनो का अभाव होने से वहाँ हाथ आदि का संकोच विकास तथा स्पर्श नही किया जा सकता।"[४८]

नोट—सूर्य की गति आदि के सम्बन्ध मे सूर्यप्रज्ञप्ति (पाहुड १ सूत्र १०) मे गौतम के प्रश्न एव भगवान के उत्तर द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार नरक आदि के वर्णन के लिए भगवती सूत्र के अनेक स्थल एव प्रज्ञापना आदि मे देखने चाहिए। गौतम स्वामी के विविध प्रश्नो का वर्गीकृत रूप 'भगवतीसार' (गोपालदास पटेल) मे भी देखा जा सकता है।

---

४७. भगवती १२।९

४८. भगवती १६।८

गुड में कितने रस ?

●

गौतम ने पूछा—भगवन् ! फाणित गुड (गुड की राव), मे मधुर रस है या कटु रस ? इसी प्रकार उसमे वर्ण, गन्ध और स्पर्श कितने हैं ?

भगवान ने कहा—"गौतम ! व्यवहार दृष्टि से गुड मे एक मधुर रस कहा जाता है, किन्तु निश्चय दृष्टि से उसमे पाच रस, पाच वर्ण, दो गन्ध एव आठ स्पर्श विद्यमान रहते हैं ।[४९]

माता-पिता का अंग

●

गौतम ने पूछा—भगवन् ! (गर्भगत जीव मे) माता के अंग कितने होते हैं ?

भगवान ने कहा—"गौतम ! माता के तीन अग (प्राणि मे) रहते हैं—मांस, रक्त और मस्तुलुंग—भेजा ।

गौतम—भगवन् ! पिता के अग कितने होते हैं ?

भगवान—गौतम ! पिता के भी तीन अग होते हैं—'अस्थि, मज्जा तथा केश-दाढी-रोम-नख ।

गौतम—भगवन् ! माता के ये अंग संतान मे कितने काल तक रहते हैं ?

भगवान—गौतम ! जितने काल तक संतान का शरीर स्थिर रहता है, तव तक माता-पिता के अग उसमे रहते है ।"[५०]

● ●

४९ भगवती १८।६

५०. भगवती [illegible]

४

स्फुट - विषय

उन्माद

●

भगवान से गौतम ने पूछा—"भगवन् ! उन्माद (विवेक हीनता) कितनी प्रकार के हैं ?

भगवान—गौतम ! दो प्रकार के हैं ।

(१) यक्षावेश रूप

(२) मोहावेश रूप (अज्ञान एव काम के आवेश)

प्रथम मे—यक्ष आदि के शरीर मे प्रवेश करने पर चेतना का भ्र श हो जाता है, विवेक लुप्त हो जाता है ।

दूसरे मे—मोह कर्म के उदय से अतत्व मे तत्व रूप श्रद्धा होती है, विषयादि के कटु फल जानकर भी उनका सेवन करता है, और कामावेश के कारण हिताहित का भान भूल जाता है ।[५१]

उपधि

●

एक बार भगवान महावीर राजगृह मे पधारे । वहाँ गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—भगवन् ! उपधि (जीवन निर्वाह मे उपयोगी साधन) कितने प्रकार की हैं ?

भगवान ने कहा—गौतम ! उपधि तीन प्रकार की है । कर्मरूप उपधि, शरीर रूप उपधि तथा वस्त्र पात्र आदि सामग्री रूप उपधि । नैरयिक एव ऐकेन्द्रिय जीवो को प्रथम दो प्रकार की उपधि होती है, बाकी सभी जीवो को तीन प्रकार की उपधि होती है ।[५२]

---

५१. भगवती १४।३

५२. भगवती १८।७

राजगृह क्या है ?

●

गौतम ने पूछा—भगवन् ! क्या राजगृह नगर पृथ्वी कहा जाय, जल कहा जाय, कूट कहा जाय, शैल कहा जाय अथवा अचित्त और मिश्र द्रव्य कहा जाय ?

भगवान—गौतम ! इन सब का समुदाय सघात ही राजगृह है।[५३]

लवण समुद्र का पानी

●

भगवान से गौतम ने पूछा—भगवन् ! लवण समुद्र का पानी उछालें मारता हुआ है, या अक्षुब्ध है ?

भगवान ने कहा—गौतम ! लवण समुद्र उछाल मारते हुए पानी वाला है।[५४]

मेघ स्त्री या पुरुष ?

●

गौतम ने पूछा—"भगवन् ! मेघ आत्म ऋद्धि से गति करता है या पर ऋद्धि से ?

भगवान—"गौतम ! मेघ परऋद्धि (वायु अथवा देव द्वारा प्रेरित होकर) गति करता है। वह पर-कर्म, पर-प्रयोग से गतिशील है।

गौतम—भगवन् ! मेघ क्या स्त्री है, पुरुष है, हाथी, है घोडा है, वह क्या है ?

भगवान—गौतम ! वह न स्त्री है, न पुरुष है, न हाथी है, न घोड़ा है, वह मेघ है।[५५]

घोड़े का शब्द

●

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् ! जब घोडा दौडता है तव वह 'खु-खु' शब्द क्यो करता है ?

---

५३ भगवती ५।९

५४. भगवती ६।८

५५. भगवती ३।४

भगवान—गौतम ! जब घोडा दौडता है तब उसके हृदय एवं यकृत् के बीच मे 'कर्कट' नामक वायु उत्पन्न होता है, उस वायु के कारण 'खु-खु' शब्द उठता है।[५६]

जृम्भक देव

●

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् । जृम्भक देव, जृम्भक (स्वच्छदचारी) क्यो कहलाते हैं ?

भगवान—गौतम । उनका स्वभाव हमेशा प्रमोदयुक्त होता है, वे अत्यत क्रीडाशील, आनदी, कंदर्प—रतिप्रिय, एव तीव्र काम स्वभाव वाले होने के कारण वे जृम्भक (स्वच्छदचारी) कहलाते हैं।[५७]

तीर्थ और तीर्थंकर

●

गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन् । तीर्थ को तीर्थ कहा जाता है या तीर्थंकर को तीर्थ ?

भगवान—गौतम । अर्हत् तो अवश्य ही तीर्थंकर हैं, परन्तु चार प्रकार का श्रमण प्रधान सघ—साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका रूप यह तीर्थ है।[५८]

दर्शन कितने ?

●

गौतम स्वामी—भगवन् ! समवसरण (दर्शन-मत) कितने हैं ?

भगवान—गौतम । समवसरण (मत-दर्शन) चार हैं—क्रियावादी, अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी।[५९]

○ ○

---

५६. भगवती १०।३

५७. भगवती १४।८

५८. भगवती २०।९

५९. विशेष विवरण के लिए देखें—सूत्र कृताग १।१२। आचाराग १।१। भगवती ३०।१ आदि।

परिशिष्ट

- प्रयुक्त ग्रन्थ सूची
- गराधरो का लेखा
- गौतम रास
- महावीर स्वामी का चौढालिया

'इन्द्रभूति गौतम' में प्रयुक्त ग्रन्थ सूची

सूत्र

(पू० रत्नचन्द्र जी म०)

अनुत्तरोपपातिक सूत्र

अभिधान चिन्तामणि कोश

अभिधानराजेन्द्र कोश

आचाराग सूत्र

आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन
(मुनि नगराज जी डी० लिट्०)

आगम युग का जैन दर्शन
(श्री दलसुख मालवणिया)

आप्टेज् सस्कृत-इग्लिश डिक्शनरी

आत्मसिद्धि शास्त्र (श्रीमद् राजचन्द्र)

आवश्यक चूर्णि

आव क नियुक्ति

आवश्यक सूत्र (हारिभद्रीय)

उत्तराध्ययन सूत्र

उत्तराध्ययन नियुक्ति

उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन
(मुनि नथमल जी)

उत्तरपुराण (गुणभद्र)

उपदेशपद टीका

उपासकदशाग सूत्र

ऋग्वेद

ओघनियुक्ति

,, —(भाष्य)

औपपातिक सूत्र

कठ उपनिषद्

कल्पसूत्र

,, कल्पलता

,, कल्पार्थ प्रबोधिनी

,, सुबोधिका टीका

कर्मग्रन्थ

कषाय पाहुड (टीका)

कौषितकी उपनिषद्

गणधरवाद

गौतमधर्म सूत्र

ज्ञाता धर्म कथा सूत्र

चार्वाक दर्शन (षड्दर्शन)

छादोग्य उपनिषद्

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज
(डा० जगदीशचन्द्र)

डिक्शनरी आव पालि प्रोपर नेम्स

त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरितम्

तीर्थंकर महावीर
—(विजयेन्द्रसूरि)
तैत्तिरीय सहिता
तैत्तिरीय ब्राह्मण
दर्शन का प्रयोजन (डा० भगवान दास)
दर्शन रत्न रत्नाकर
दशवैकालिक सूत्र
,, —निर्युक्ति
दीघ निकाय
नन्दी सूत्र
नियमसार
निरआवलिया सूत्र
निरुक्त
निशीथचूर्णि
Nature of conseioues ness in Hindu Philosophy.
न्यायमजरी
न्यायवार्तिक
न्यायसूत्र
पचास्तिकाय
प्रज्ञापना सूत्र
प्रवचनसारोद्धार
बुद्ध चरित
ब्रह्मविन्दु उपनिषद्
ब्रह्मजाल सुत्त
ब्रह्मसूत्र (शाकर भाष्य)
बृहद्कल्प सूत्र
बृहदारण्यक उपनिषद
बृहदारण्यक (भाष्य वार्तिक)
बृहदारण्यक उपनिषद् (शाकर भाष्य)
भगवती सूत्र (पं० बेचरदास जी)
भगवती सार (गोपालदास पटेल)
भगवान पार्श्व · एक समीक्षात्मक अ
(देवेन्द्र मुनि शास्त्री)
भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास
—डा० वी० सी० पाण्डे
भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोश
मज्झिमनिकाय
मनुस्मृति
महाप्रत्याख्यान
महाभारत
महावीर चरिय—गुणचन्द्र
,, —नेमिचन्द्र
माण्डुक्य उपनिषद्
मीमासा सूत्र
मुण्डक उपनिषद् (शाकर भाष्य)
मैत्रायणी उपनिषद्
मैत्र्युपनिषद्
यजुर्वेद
रायपसेणीसूत्र
वाशिष्टधर्मसूत्र
विनयपिटक
विपाक सूत्र
विष्णु पुराण
विशेषावश्यक भाष्य
वैदिक कोश (सूर्यकान्त)
वैशेषिक सूत्र
शतपथ ब्राह्मण
षट्खडागम (धवला)

सन्मतितर्क (सिद्धसेन)
समयसार
समवायांगसूत्र
संयुत्त निकाय
स्थानांग सूत्र
सांख्य कारिका
सुत्त निपात
सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र
सूत्रकृतांग सूत्र
स्मृति चन्द्रिका
सौभाग्यपचम्यादि पर्वकथा संग्रह
श्वेताश्वतरोपनिषद्

• •

श्री गौतम रास

•

दोहा

गुण गाऊं गौतम तणा, लब्धितणां भण्डार ।
वडा शिष्य भगवन्तना, जाने सहु संसार ॥
प्रति बुझया प्रभु जी कने, गणधर गौतम स्वाम ।
संजम पाली सिद्ध हुआ, लीजे नितप्रति नाम ॥

ढाल

तीरथनाथ त्रिभुवन धणी,
प्रभु शासणना सिरदार ।
भक्ति कियां भगवन्त नी,
जाके वाछित फल दातार ।
सुमर्‌यां होय सकल सुखकार जी,
नित वरते जय जयकार जी ।
प्रभु पहुंच्या मुक्ति मंझार जी,
प्रभु थाप्या तीरथ-चार जी ।
चारो संघ माहि सिरदार जी,
गौतम नाम वडा गणधार जी ।
जाने होज्यो म्हारो नमस्कार जी,
हिवडा वीच वार हजार जी ।
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा·······

सोलमा सोना सारखा जी,
अति सुन्दर वर्ण शरीर।
कंचन कसौटी चढावियो,
भगवती मे कह्यो महावीर जी।
जाने दीठा हर्षित हीर जी,
स्वामी सायर जिम गम्भीर जी।
वली खम दम संजम धीर जी,
जारी वाणी मीठी खाड खीर जी।
मीठी क्षीर समुद्र ज्यूं नीर जी,
छह काय जीवांरा पीर जी।
हुआ वीर तणा वजीर जी,
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा ......

गौरा ने घणा फूटरा जी,
कंचन कोमल गात।
देही जारी दिपुं दिपुं करे,
देवता पिण कितरिक बात जी।
रोग रहित काया सात हाथ जी,
घणा रह्या गुरा जी रे साथ जी।
सेवा कीधी दिन ने रात जी,
पूछा कीधी जोडी दोनो हाथ जी।
जांरी कहूं कठालग बात जी,
जारे वीर दियो माथे हाथ जी।
हुआ तीन भुवनरा नाथ जी,
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा ....

प्रथम संघयण सठाण सु जी,
गुण गहिरा भरपूर।
ब्रह्मचर्य मे बस रह्या,
वलि तपस्या घोर करूर जी।

कायर कापी जावे दूर जी,
दीपे तपस्या में अतिशूर जी ।
आगे कर्म किया चकचूर जी,
जारो चोखो घणो छै नूर जी ।
जारो भजन किया दु.ख दूर जी,
म्हारी वन्दना उगते सूर जी ।
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा ·······

अभिग्रह कीधो आकरो जी,
सूत्र भगवती रे माय जी ।
चार ज्ञान चवदे पूर्व घणी,
वलि तेजु लेश्या पिण्ड माय जी ।
दपटी राखी छै मन माय जी,
दीनो ध्यानसु' चित्त लगाय जी ।
उकड़ू बैठा शीस नमाय जी,
जारी करणी मे कमीय न काय जी ।
जारो भजन किया सुख पाय जी,
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा·······

पूछा जद कीधी घणी जी,
आणी मन्न आनन्द जी ।
श्रद्धा मे सशय नही उपनो,
उपनो केवल उछरंग जी ।
वादे श्री वीर जिनन्द जी,
पूछिया देश प्रदेशनास्कन्व जी ।
अनन्त ज्ञानी त्रिशलाना नन्द जी,
सूत्र मेल दिया सघो-सघ जी ।
जाने सेवे सुर नर वृन्द जी,
तारा वीच विराजे चन्द जी ।
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा·······

सूत्र भगवती मे पूछिया जी,
प्रश्न छत्तीस हजार ।
अंग उपाग मे पूछिया जी,
पूछा कीधी पहले पार जी ।
तीरथनाथ किया निस्तार जी ।
गौतम लिया हिरदा मे धार जी ।
जारी बुद्धि रो नही छै पार जी,
स्वामी ज्ञान तणा भण्डार जी ।
घणा जीवा पै कियो उपकार जी,
उण पुरुषारी जाऊ वलिहार जी ।
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा.......

एक दिन गौतम मन चितवे जी,
मने क्यो न उपजे केवलज्ञान ।
खेद पाम्या प्रभु देखने,
बुलाया श्रीवर्धमान जी ।
मन वाछित देवे दान जी,
गौतम सन्मुख उभा आन जी ।
वीर दियो आदर सन्मान जी,
गौतम गुण-रत्ना री खान जी ।
चित्त निर्मल राखो ध्यान जी,
तजो मोह मत्सर अभिमान जी ।
छह काया ने दो अभय-दान जी,
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा.....

थारे ने म्हारे गोयमा रे,
घणा कालनी प्रीत ।
आगे ही आपाँ भेला रह्या,
वलि लोहड वडाई नी रीत जी ।

मोह कर्म ने लीजो थे जीत जी,
केवल आडो आई छै भीत जी।
थे तो शिष्य वडा सुविनीत जी,
थे तो राख जो रूड़ी रीत जी।
थे तो पालजो पूरी प्रीत जी,
राखी मोक्ष जावण रो चित्त जी।

श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा.......

अव के अर्णो भव आतरे,
आपां दोनूं बरावर होय।
अजर अमर सुख सासता,
जठे जन्म मरण नंही होय जी।
भूख तृषा न लागे कोय जी,
गुरु मोटा मिलिया मोय जी।
म्हारे कमी रही नहीं कोय जी,
वीर ने सामा रह्या छै जोय जी।
दीठा हर्षित हिवड़ो होय जी,
मोहनी कर्म ने दीघो खोय जी।

श्री गौतम स्वामी मे गुणघणा.......

वीर वचन प्रभु साभली जी,
कीघो कर्मा सु जंग।
करणी कोधी निर्मली,
शिष्य वीर तणा सुविनीत जी।
हुआ ब्राह्मण केरा पूत जी;
छोडो नातीलां सु प्रीत जी।
जारे वीर वचन आया चित्त जी,
तज दीनी खोटी रीत जी।
जारे आई साची प्रीत जी,
जोडी जुगत मुक्ति सु प्रीत जी।

तपसी मोटा काकडा भूत जी,
प्रभु गया जमारो जीत जी।
धर्म ध्यानी जीवांरा मीत जी,
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा.......

ज्ञान, दर्शन, चारित्र भणी जी,
पाले निर अतिचार ।
बेले बेले पारणा प्रभु,
जीत्या राग ने रीस जी।
जांरी करणी बिसवावीस जी,
जांरो भजन कियो निशदिस जी।
पूरो मननी सकल जगीस जी,
जाने नमाऊँ म्हारो शीस जी।
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा.......

स्व-मुख वीर वखाणिया जी,
गौतम ने तिण बार ।
चर्चावादी तू अतिघणो,
हेतु युक्ति अनेक प्रकार जी ।
पाखण्डिया रो जीतण हार जी,
बीजा साधु सहू थांरी लार जी।
साभली हिवडो हर्ष अपार जी,
तीरथनाथ निकाल दियो तार जी।
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा.... ...

संसार समुद्र जाणने जी,
मोह कर्म कियो छार ।
अनित्य भावना भायने,
पायो केवल दर्शन सार जी।
गौतम स्वामी बडा गणधार जी,
आप तिर्‌या घणा दिया तार जी।

जाने वन्दना वारम्वार जी,
जांरो नाम लिया निस्तार जी।
जपता होवे खेवो पार जी,
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा ......

कार्तिक वदी अमावस्या जी,
मुक्ति गया वर्धमान।
गौतम स्वामी ने ऊपनो तव,
निर्मल केवलज्ञान जी।
धर्म दीपायो नगर पुर ठाम जी,
सिद्ध कीधा आतमकाम जी।
पाया सुख अक्षय अभिराम जी,
स्वामी पहुँचा शिवपुर ठाम जी।
बारम्वार करू गुणग्राम जी,
धन-धन श्री गौतम स्वाम जी।
श्री गौतम स्वामी में गुण घणा.......

पूज्य जयमल जी परसाद से जी,
कीधो ज्ञान अभ्यास।
संवत अठारे चौतीस मे
नवमी सुदि भादवा मास जी।
गौतम जी ने कीधो रास जी,
सुणज्यो सहु चित्त उल्लास जी।
पावो नित नव लील विलास जी,
शहर बीकानेर चौमास जी।
ऋषि रायचन्द्र कियो परकास जी,
श्री गौतम स्वामी मे गुण घणा.......

महावीर स्वामी का चौढालिया

ढाल—१

सिद्धारथ कुलमां जी उपन्या, त्रिशला दे थारी मात जी ।
वर्षीदान ज देई करी, संयम लीनो जगन्नाथ जी ।।
थे मन मोह्यो महावीर जी.....

थें मन मोह्यो महावीर जी, थांरी कंचन वर्णीकाय जी ।
नयन न धापे जी निरखतां, दीठा आवो छो दाय जी ।।थें०।।

आप अकेला सयम आदर्यो, ऊपन्यो चौथे ज्ञान जी ।
उत्कृष्ट्यो तप थें आदर्यो, धरता निर्मल ध्यान जी ।।थें०।।

उग्रविहार थें आदर्यो, कई वासा रह्या वनवास जी ।
कई वासा वस्ती मे रह्या, रह्या एकण ठामे चौमास जी ।।थें०।।

प्रभु पहलो चौमासो थें कियो, अस्थिगांव मझार जी ।
दूजो वाणीज गांव मे, पच चपा सुखकार जी ।।थें०।।

पांच पृष्ठचम्पा किया, विशाला नगरी मे तीन जी ।
राजगृही मे चवदे किया, नालन्देपाडे लवलीन जी ।।थें।।

छ चौमासा मिथिला किया, भद्रिका नगरी मां दोय जी ।
एक कर्यो रे आलम्भिया, सावत्थि नगरी एक होय जी ।।थें०।।

एक अनारज देश मे, अपापा नगरी एक जाण जी ।
एक कर्यो पावापुरी, जठे प्रभु पहोच्या निर्वाण जी ।।थें०।।

हस्तीपाल राजा इम विनवे, हुं तुम चरणा रो दास जी ।
एक शाला म्हारें सूझती, आप करो चौमास जी ।।थें०।।

चालीस चौमासा शहर मे, दाख्या दश नगरी ना नाम जी ।
एक अनारज देश मे, एक चौमासो वलीगाम जी ।।थें०।।

प्रभु गाम नगर पुर विचरिया, भव्य जीवा रे भाग जी ।
मार्ग वतायो मोक्ष को, कियो उपकार अथाग जी ।।थें०।।

साढ़ा बारह वरसां लगे, ऊपर आधो मास जी ।
छद्मस्थ रह्या प्रभु एटला, पछे केवल ज्ञान प्रकाश जी ।।थें०।।

वर्ष बयालीस पालियो, संयम साहस धीर जी ।
तीस वर्ष घर मां रह्या, मोक्षदायक महावीर जी ।।थें०।।

पावापुरी मे पधारिया, नरनारी हुआ हुल्लास जी ।
'ऋषिरायचन्द' इम विनवे, हूं आयो प्रभुजी ने पास जी ।।थें०।।

संवत् अठारे गुण चालीस मे, नागौर शहेर चौमास जी ।
पूज्य जैमल जी के प्रसाद थी, मैं ए करी अरदास जी ।।थें०।।

ढाल—२ **राग—काची कलियां**

शासननायक वीर जिनन्द, तीरथनाथ जाणे पुनमचन्द ।
चरणें लागे ज्यांरे चौंसठ इन्द्र, सेवा करे ज्यांरी सुरनर वृन्द ।।
थें अब को चौमासो स्वामी जी अठे करो जी, अठे करो २ जी ।
चरम चौमासो स्वामी जी अठे करोजी ········

हस्तिपाल राजा विनवे कर जोड,
पूरो प्रभुजी म्हारा मनडारी कोड ।
शीश नमाय ऊभो जोडी जी हाथ,
करुणासागर वाजो कृपा जी नाथ ।।थें०।।

रायनी राणी विनवे राजलोक,
पुण्य जोगे मिल्यो सेवानो संजोग ।
मन वाछित सहु मिलिया जी काज,
थें दयाकरी सामु जोवो जिनराज ।।थें०।।

श्रावक श्राविका कई नरनार,
मिली विनती करे बारम्वार ।
पावापुरी मे पधार्या वीतराग,
प्रगटी पुण्याई म्हारा मोटा जी भाग ।।थें०।।

वली हस्तिपाल राजा विनवे भूपाल,
थें छो प्रभुजी म्हारे दीन दयाल ।
सूझती म्हारे छे मोटी जी शाल,
लाग रह्यो प्रभु वर्षा जी काल ।।थें०।।

मानी विनती प्रभु रह्याजी चौमास,
पावापुरी मा हूवी हर्ष उल्लास ।
गौतम गणधर गुराजी रे पास
निशदिन ज्ञान रो करे जी अभ्यास ।।थे०।।

साधु अनेक रह्या कर जोड,
सेवा करे सदा होडा जी होड़ ।
चवदे हजार चेला रत्नारी माल,
दीक्षा लीधी छोडी माया जंजाल ।।थें०।।

बड़ी चेली चन्दनबाला जी जाण,
हुई कुंवारी महासती चतुर सुजाण ।
मोत्यां नी माला छत्तीस हजार,
सगली मे बड़ी साध्वी सरदार ।।थें०।।

चारो ही संघ नित्य सेवा करे,
प्रभु जी ने देखी देखी आंख्या ठरे ।
नवमल्ली ने नवलच्छी जी राय,
ज्यारें दर्शनरी छे चित्त मे चाय ।।थें०।।

लाख बत्तीस विमान को राय,
आया पावापुरी में प्रभु कने चलाय ।
दो सहस्र वर्षांरो पडसी भस्मी जी काल,
एक पल आउखो आधो दीजो जी टाल ।।थें०।।

वलता भाखे श्री वीर जिनन्द,
इण वाता रो नही मिले जी सम्बन्ध ।
हुई नही होवे नही होसी नही वात,
आउखो नी वधे एक समय तिलमात ।।थें०।।

संघ सघला रे हुई रग री रली,
पुण्य योगे प्रभुजी री सेवा भली ।
'ऋषि रायचन्द' विनवे जोडी हाथ,
थे करुणा सागर वाजो कृपाजी नाथ ।।थे०।।

नागौर शहर मे कियो जी चौमास,
दिज्यो प्रभुजी म्हाने मुक्ति नो वास ।
हूँ सेवक तुम साहिव स्वाम,
अवर देवासु म्हारे नही कोई काम ।।थें०।।

ढाल—३

शासन नायक श्री महावीर,
तीरथनाथ त्रिभुवन घणी ।
पावापुरी मे कियो चरम चौमास,
हुई मोक्षदायक री महिमा घणी ।।

गौतम ने मेल दियो महावीर, देवशर्मा प्रतिवोधवा ।।टेर।।

उत्तराध्ययन रा अध्ययन छत्तीस,
कार्तिक वदी अमावस्ये कह्याँ ।
एक सौ ने वली दश अध्ययन,
सूत्र विपाक तणा लह्या ।।गौ०।।

पोसा कीधा श्रीवीर जी रे पास,
देश अठाराना राजीया ।
नव मल्ली ने नवलच्छी जी राय,
वीर ना भगता जी वाजीया ।।गौ०।।

प्रभु शासन ना सिरदार,
सर्व संघ ने सन्तोप मे।
सोले प्रहर लग देशना दीघ,
पछे वीर विराज्या मोक्ष मे ॥गौ०॥

तीन वर्ष ने साढ़ा आठ मास,
चौथा आरा ना वाकी रह्या।
दिन दोय तणो सथार,
मौन रही मुगते गया ॥गौ०॥

इन्द्र आव्या जी चित्त उदास,
देव देवी ना साथ मे।
जाणे जगमग लग रही ज्योत,
अमावस्या नी रात मे ॥गौ०॥

मुगति पहोच्या एकाएक,
सात से हुआ ज्यारे केवली।
चवदह सौ साध्वियाँ हुई सिद्ध,
हूँ सहुँ ने वंदू मन रली ॥गौ०॥

रह्या तीस वर्ष घर माय,
वर्ष बैयालीस संयम पालियो।
प्रभु जगतारणा जगदीश,
दयामार्ग उजवालियो ॥गौ०॥

होजी देव, देवो ने वली इन्द्र,
निर्वाण तणो महोत्सव कियो।
अरिहंत नो पडियो वियोग,
सुर नर नो भरियो हियो ॥गौ॥

साधु साध्वी करता शोक,
श्रावक श्राविका पण घणा।
भरत क्षेत्र मा पडियो वियोग,
आज पछी अरिहंत तणो ॥गौ०॥

पंछी बैठा सुधर्मा स्वामी पाट,
चारो ही संघ चरण सेवता।
ज्यारी पालता अखण्डित आण,
सेवा करे देवी ने देवता ॥गौ०॥

मुगते पहोच्या श्री महावीर,
प्रभु सुख पाम्या छे शाश्वता।
'ऋषिरायचन्द' कहे एम,
म्हारे अरिहंत वचन की आसता ॥गौ०॥

ढाल—४ राग—चढो-चढो लाड़ा वार म लावो

गुरांजी थे मने गोडे न राख्यो, मुगति जावण रो नाम न दाख्यो ॥टेर॥

श्री महावीर पहोंच्या निर्वाणी।
गौतम स्वामी ए वात ज जाणी ॥गु०॥

हूं सगला पहेला हुवो थारो चेलो।
इण अवसर आघो किम मेल्यो ॥गु०॥

प्रभु तुम चरणे म्हारो चित्त लागो।
आप पहुंता निर्वाण मने मेल दियो आगो ॥गु०॥

मने आपरा दर्शन लागता प्यारो।
आप पहोच्या निर्वाण मने मेल दियो न्यारो ॥गु॥

आप तो मुझ सूं अन्तर राख्यो।
पिण मैं म्हारा मन रो दर्द न दाख्यो ॥गु०॥

हूं आडो मांडी नहीं झालतो पल्लो।
पण शाबास काम कियो तुम भल्लो ॥गु०॥

हूं तुमने अन्तराय न देतो।
मुगती मे जागा व्हेची नहीं लेतो ॥गु०॥

हूं संकड़ाई न करतो कांई।
आप साथे हूं मोक्ष में आई ॥गु०॥

अव हूं पूछा करसुं किण आगे।
प्रभु म्हारो मन एक थांसुं ही लागे ॥गु०॥
म्हारो सांसो कहो कुण टाले।
आप विना पाखण्डी ना मद कुण गाले ॥गु०॥
हुंता चौदे पूरव ने चौनाणी।
पिण मोहनीय कर्म लपेट्यो आणी ॥गु०॥
ऐसो गौतम स्वामी कियो विलापात।
ए मोहनी कर्म नी अचरज वात ॥गु०॥
हवे मोहनीय कर्म दूरे टाली।
गौतम स्वामी ए सुरती संभाली ॥गु०॥

राग—वीतराग राग द्वेष ने जीत्या ॥टेर॥

वीतराग राग द्वेष ने जीत्या।
म्हारां चित्त मां आई गई चिन्ता ॥वी०॥
तिण वेला निर्मल ध्यान ज ध्यायो।
केवल ज्ञान गौतम स्वामी पायो ॥वी०॥
वारावर्ष रह्या केवलज्ञानी।
बात ज्यांसु कोई नही रही छानी ॥वी॥
गौतम पण कियो मुक्ति मे वासो।
ससार नो सर्व देखे तमासो ॥वी०॥
जणी राते मुक्ति गया वर्द्धमान।
इन्द्रभूति ने उपन्यो केवलज्ञान ॥वी॥
तिण दिन थी ए वाजी दिवाली।
म्होटो दिन ए मंगल माली ॥वी०॥
रात दिवाली नो शियल थें पालो।
वली रात्रि भोजन नो कर दो टालो ॥वी०॥
'ऋषि रायचन्द' कहे सुणो हो सुज्ञानी।
दया रूप दिवालो थें लेज्यो मानी ॥वी०॥

कलश—

श्री शासन नायक, मुक्ति दायक,
दया मार्ग उजवालियो ।
श्री गौतम स्वामी, मुक्तिगामी,
कियो चित्तवल्लभ चोढालियो ॥
संवत् अठारे, गुण चालीसे
नागोर चौमासो निर्मल मने ।
पूज्य जेमल जी प्रसादे,
पूर्ण कियो दिवाली रे दिने ॥

• •